॥ श्री रामः शरणं मम्॥ ॥ श्री गुरुः शरणं मम्॥ ॥ ॐ हँ हनुमते नमः॥

॥ सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥

प्रेमावतार त्रय–समन्वित

(श्री भरत जी, श्री लक्ष्मी निधि जी एवं श्रीराम हर्षणदास जी)

लेखक :-

स्वामी श्री हर्षण दासानुदास

कौशल किशोर दास (सुरेन्द्र रामायणी)

"नेह–निकुँज", पन्ना रोड, सतना (म.प्र.), फोन: 07672–230012

।। श्री रामः शरणं मम्।।

।। श्री गुरुः शरणं मम्।।

।। ॐ हँ हनुमते नमः।।

।। सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।

प्रेमावतार त्रय-समन्वित

(श्री भरत जी, श्री लक्ष्मी निधि जी एवं श्रीराम हर्षणदास जी)

लेखक :-

स्वामी श्री रामहर्षण दासानुदास

कौशल किशोर दास (सुरेन्द्र रामायणी)

पुस्तक परिचय

प्रकाशक एवं वितरक -

श्रीराम हर्षण मंडल, नेह निंकुज, वामन नगर, उत्तरी पतेरी, पो. महदेवा, जिला-सतना (म.प्र.) पिन - 485 002

पुस्तक प्राप्त होने के अन्य पते -

1. श्री रुद्र सिंह यादव सचिव मानस-मित्र संस्थान, मु. पो. देवेन्द्र नगर, जिला-पन्ना (म.प्र.), पिन - 488333 मोबाइल नं. 9981390261
2. श्री रमेशकुमार त्रिपाठी, सिंचाई विभाग, रीवा

   (अ) रीवा मँझियार रोड, अनंतपुर, जिला-रीवा (म.प्र.)

   (ब) किशोरी तीर्थ सदन, गुढ़ महादेवन टोला, रीवा, पिन - 486001, मो. 900925471
3. श्री दुर्गाप्रसाद अग्रवाल श्री राघव सदन 313, रास गर्वा मैदान, समता कॉलोनी, रायपुर, पिन - 492001, मो. नं. 9329764621 (छत्तीसगढ़)
4. श्री बाबूलाल विश्वकर्मा, अर्जुननगर, दक्षिणी पतेरी, पो. महदेवा, जिला-सतना (म.प्र.), पिन - 485 002 मोबाइल नं. 9993099915

मुद्रक -

सतना आर्ट प्रिंटर्स, कैलाश टाकीज के सामने, सतना, फोनः 07672-234969, 230375

प्रथम संस्करण - 1000 प्रति

न्योछावर - 100/- एक सौ रुपये मात्र

प्रकाशन तिथि - श्री सीताराम विवाह पंचमी, अगहन शुक्ल 5 श्री आचार्य पीठ पौड़ीधाम

卐卐

सीता राम चरण रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥

डॉ. (श्रीमती) ज्ञानवती अवस्थी

एम.ए., पी.एच.डी., "मानस रत्न"

सेवानिवृत्त प्राचार्य

शासकीय महाविद्यालय

बोदा बाग रोड

(हाउसिंग बोर्ड कालोनी के पास)

रीवा, म.प्र. 486001

फोन–07662–241193

स्वस्ति–प्रशस्ति

अनन्तश्री विभूषित प्रेमावतार पंचारसाचार्य संत प्रवर श्रीरामहर्षणदास जी के कृपापात्र श्री सुरेन्द्रकुमारजी 'रामायणी', सेवानिवृत्त प्राचार्य एक संस्कारी परम वैष्णव संत स्वभाव वाले भावुक भक्त हैं। आप श्रीरामचरित मानस के ओजस्वी एवं सरस वक्ता हैं। भारतवर्ष के सैकड़ों व्यासपीठों को आपने सुशोभित किया है। रामवन के अतिरिक्त अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं की सेवा आप निरन्तर करते रहते हैं। वीररस एवं करूणा रस की व्याख्या आपके द्वारा जब होती है तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। 'मानस' पर आपका अध्ययन एवं अधिकार है। आप भगवत–रस–रसिक प्रेमी संत हैं। श्रीभरत चरित्र पर आपके प्रवचन सुनकर भक्तजन भावविभोर होकर मुग्ध हो जाते हैं।

ऐसे सुपात्र के द्वारा– ***"सब विधि भरत सराहन जोगू"***– शीर्षक के रूप में श्री भरतलालजी का वर्णित चरित्र अपूर्व बन पड़ा है। श्रीभरतजी के चरित्र का वर्णन कर सकना सबके वश की बात नहीं है– तुलसीदासजी महाराज कहते हैं– ''कवि कुल अगम भरत गुन गाथा''। लेखक श्री सुरेन्द्र कुमार जी स्वयं भरतजी जैसी रहनी में रहते हैं। श्रीराम प्रेम में डूबे नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते रहते हैं। आपमें भावुकता एवं विद्वता दोनों का संमिश्रण है।

ग्रंथ के छठवें अध्याय में श्रीरामजी एवं श्रीभरतजी का तुलनात्मक विवेचन बहुत सुन्दर किया गया है। लेखक की कुछ व्याख्यायें बेजोड़ हैं– 'प्रयागराज तो चार पदार्थ भक्तों को प्रदान करते हैं किन्तु श्रीभरतजी लोकोत्तर प्रयाग हैं जो पंचम पुरूषार्थ–प्रभु प्रेम– सुलभ कराने वाले हैं।

卐卐

श्रीरामजी का वाण प्राण लेकर दिव्य धाम पहुँचाता है किन्तु श्रीभरतजी का वाण सदेह श्रीराम के पास पहुँचा देता है।– इस प्रकार के सैकड़ों सुन्दर भाव लेखक ने अपने ग्रंथ में भरे हैं।

अनेक ग्रंथों के उद्धरण के साथ लेखक ने स्वयं निर्मित छप्पय में भी अपूर्व भाव भरे हैं– जैंसे पंचामृत का छप्पय बहुत सुन्दर है – (नवम् अध्याय में)

अमृत दुर्लभ तत्व परम आनन्द प्रदाता,
विश्व माँहि नहिं सुलभ गुप्त रचि दियों विधाता ।
सोइ तुलसी ने मानस में पंचामृत कीन्हों ॥
कथा नाम अरू रूप, कृपा को अमृत दीन्हों ।
प्रभु वचनामृत हरिहिं सम, प्रेम सुधा सुखदायिनी ।
पिवहु भक्तजन कर्णपुट, कह सुरेन्द्र रामायणी ॥

इस प्रकार लेखक के अनेक छप्पय रस और भावों की पुष्टि करते हैं।

अध्याय सत्रह में लेखक की व्याख्या बहुत मार्मिक है ।

हिन्दी भाषा में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने वाले ग्रंथ रचयिता की भाषा बहुत प्रांजल एवं सरस है ।

भावुक भक्तों, रसिक प्रेमियों को तो यह ग्रंथ रससिक्त अवश्य करेगा इसके साथ ही हिन्दी साहित्य के विद्वानों एवं अध्येताओं को अनेक गूढ़ भाव एवं अनूठी व्यंजनाओं के दर्शन होंगे।

यह ग्रंथ लेखक सुरेन्द्र कुमारजी की तपस्या का फल है उन्होंने परिश्रम करके अपने अन्तर्हित प्रेम–भावों को अभिव्यक्ति प्रदान कर प्रेमियों का बहुत बड़ा कल्याण किया है इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं ।

अगम भरत चरित्र को सुगम बनाने वाले वैष्णव संत पूर्व प्राचार्य श्री सुरेन्द्र कुमारजी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें तथा अपनी रसमयी वाणी एवं रससिक्त लेखनी से रसिक जनों को रससिक्त करते रहें, प्रभु राघवेन्द्र सरकार से यही कामना करती हूँ।

॥ श्री रामः शरणं मम॥

मानस केसरी
आचार्य अवध किशोरदास

श्री रामहर्षण कुंज
परिक्रमा, नयाघाट
श्री अवधधाम,
जिला–साकेत (उ.प्र.)

"नास्ति येषां यशः काये, जरामरणजं भयम्"

रससिद्ध कवीश्वरों के काव्य में मनीषियों ने जरामरण जन्य विनाश के भय को स्वीकार नहीं किया। रस–मर्मज्ञ गृहस्थ सन्त श्री सुरेन्द्र जी की इस कृति में भी मुझे आदि से अन्त तक प्रत्येक शीर्षक के माध्यमसे व्यक्त महात्मा श्री भरत के "सब बिधि भरत सराहन जोगू" चरित्र में सर्वत्र काव्य की ही रसमयता के दर्शन हुए। जिस स्तम्भ में ही प्रवेश किया बिना आद्यन्त पढ़े विराम नहीं लग पाया।

श्री मन्मानसकार ने श्री भरत चरित्र को दिव्य प्रयाग निरुपित करते हुए, एक नूतन त्रिवेणी, का वहाँ दर्शन कराया है। श्री सुरेन्द्र कुमार जी की इस कृति में भी एक अभिनव त्रिवेणी का प्राकट्य है। प्रेमावतार श्री भरत, प्रेम विग्रह युवराज लक्ष्मी निधि एवं प्रेम रसावतार श्री स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज की चरित्रत्रयी रसधारा में लेखक का रसोर्मिलि अन्तःकरण ऐसे प्रवाहित हुआ है, कि सामान्य पाठक भी उसमें डूबे बिना नहीं रह सकता।

श्री सुरेन्द्र कुमार जी इस पंक्तियों के लेखक के रामायणी मित्र भी हैं। कई दशकों तक ये किशोर –युगल देश के मानस मंचों में साथ–साथ आहूत होते रहे। श्री सुरेन्द्र जी की यह कथायात्रा मानस–मंचों में वीर रस के यशस्वी वक्ता के रूप में स्थापित हुई। द्रवित अन्तःकरण को जब से प्रेम रामायण और प्रेमरामायणकार के चरित्रों का साक्षात्कार हुआ, तब से उनके चरित्र में, एक आत्म–तुष्टि युक्त प्रेम–सुधा–सिन्धु का अवतरण हुआ। उनकी इस कृति में उसी अमृत–सरोवर की त्रिधा –रसतरंगिणी का उदय हुआ है।

श्री सुरेन्द्र जी की लेखनी में प्रेषणीयता, साहित्यकता, रसमयता, परिष्कृत–अभिव्यक्ति का अनूठा संगम है। भाषा में प्रौढ़ साहित्यिक अभिव्यक्ति तो है ही, प्रसंगो के चित्रण में जो सरस–रस प्रवाह है, वह भाषा को बोझिल होने नहीं देता।

जैसे गंगावतरण में अनेक अवरोधों के पड़ावों को तोड़ते किसी भागीरथ के संकल्प ने अन्ततः उसे धरा में ला ही दिया, उसी प्रकार यह कृति भी न जाने कहाँ–कहाँ गई, और न जाने कितने कितने वर्षों तक कहाँ–कहाँ विश्राम लेती रही, परन्तु यह भगवत्कृपा का ही फल है कि आज यह पाठकों के हाथों में आ रही है। श्री सुरेन्द्र जी की इस कृति से जहाँ साहित्यिकों को साहित्यिक रसास्वाद प्राप्त होगा, भावुकों की अश्रुधाराओं को प्रवाह मिलेगा, वहीं शोधार्थियों को भी प्रचुर सामग्री प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी लिये मुझे कहना पड़ रहा है कि, यह कालजयी कृति है, जिसमें जरा–मरणज–भय नहीं है।

कृति के लिये तथा कृतिकार के लिये अन्तःकरण की समस्त शुभ–कामनायें। कृतिकार को अनन्त मंगलाशीषों के साथ साधुवाद देते हुये।

श्री अयोध्याधाम

अवधकिशोर दास
(भइया जी)

卐卐卐

।। श्री गुरूः शरणं मम।।

हरिगोविन्द द्विवेदी
साहित्याचार्य
एम.ए. (हिन्दी एवं इंग्लिश)

श्रीराम कृष्ण मंदिर
उपरहटी, रीवा (म.प्र.)

शुभाकांक्षा

सच्चिदानन्द रूपं तं प्रेम ब्रह्म परात्परम्।
प्रेमादर्शेषु सुव्यक्तं वन्दे तत्वं सनातनम्।।

श्री सुरेन्द्र कुमार जी रामायणी द्वारा प्रणीत अभिनव ग्रन्थ ''सब बिधि भरत सराहन जोगू'' (प्रेमावतार त्रय—समन्वित) का अवलोकन किया। ग्रन्थ महामहिम विभूतियों के आदर्श प्रेम का चित्रांकन है। ''अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्''। अतः यह अनिर्वचनीय प्रेम तत्व आदर्श रूप में जिनके जीवन में उतरा हो, तो वे चरित्र भी अनिवर्चनीय ही होंगे। अस्तु अनिर्वचनीय को वचनीयता में लाने वाला भी कोई विलक्षण ही होना चाहिये।

इस ग्रन्थ में श्री रामायणी जी ने प्राचीन और अर्वाचीन आदर्शों का एक बड़ा ही सुन्दर संगम प्रकट किया है। परमप्रेमस्वरूप श्री भरत जी, जिनके आदर्श भ्रातृ—प्रेम, तज्जन्य त्याग और रहनी के कथन के सम्बन्ध में महामनीषी यथा श्री वशिष्ठ जी, श्री जनक जी, श्री शारदा जी और स्वयं पूर्ण ब्रह्मावतार श्रीराम जी ने असमर्थता का अनुभव किया हो, उनके विषय में कुछ टिप्पणी देना कहाँ तक समीचीन होगा ? इधर श्री ज्ञान—शिरोमणि श्री विदेह जी के पुत्र श्री लक्ष्मी निधि जी भी श्रीराम भाम—प्रेम के महादर्श है। अर्वाचीन आदर्श प्रेमी श्रीरामहर्षण दास जी भी महादर्शों में अन्यतम हैं। वे प्रेमावतार हैं। मनीषियों ने श्रीमहाराज जी के प्रेममय जीवन में श्री भरत, श्री लक्ष्मीनिधि और श्री चैतन्य महाप्रभु का ही आदर्श विद्यमान पाया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री राम चरितमानस (श्री तुलसी कृत) श्री रामहर्षणदास जी महाराज का महाकाव्य ''प्रेम रामायण'', श्री हरिगोविन्द द्विवेदी द्वारा प्रणीत ग्रन्थ ''अनन्त श्री स्वामी जी श्री राम हर्षण दास जी महाराज का चतुर्धाम—यात्रावृत्त'' श्री नारद—भक्ति—सूत्र, प्रेम योग प्रभृति अनेक ग्रन्थों से प्रेम सूत्र लेकर एक ही ग्रन्थ की गागर में सागर भरने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है। मेरा विश्वास है कि महा—महिम्न प्रेमादर्शों की भाँति ही यह ग्रन्थ भी एक विलक्षण आदर्श ग्रन्थ सिद्ध होगा। यह अमर कृति लेखक श्री रामायणी जी के प्रेम चरित्र—प्रणयन

卐卐卐

की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है, और उनकी अक्षुण्य कीर्ति का कारक भी।

वेदन को सोधि सोधि पावन पुराण ग्रन्थ,
सोधि नारदादि प्रेम वाणी रस दायिनी।
सोधि 'मानस' के वन वाटिका सुमन बाग,
सोधि प्रेम रामायण प्रेम की विधायिनी।।
ब्रह्म सारभूत प्रेमपावन को सोधि सोधि।
प्रकटी आदर्श प्रेम–मधु अनपायनी।
भाँति मधुमक्षिका के सबको कराया सुलभ,
''गोबिन्द'' धन्य–धन्य श्री सुरेन्द्र रामायणी।।

श्लोक :– सुधी बन्धु सुरेन्द्रस्य महनीयाद्‌भुता कृतिः।
गुरुदेव प्रसादेन महन्महनीयतां लभेत्।।
निखिल मानव लोक हितावहा
परम पावन प्रेम प्रवर्धिनी।
कवि सुरेन्द्र कुमार कृता कृतिः
भवतु मंगल–मोद विधायिका।।

हरिगोविन्द द्विवेदी
साहित्याचार्य

卐卐卐

॥ श्री गुरू शरणं मम॥

श्री गुरूपद रेणु संत
भगवानदास

श्रीराम हर्षण कुंज
श्री अयोध्या धाम

श्री सुरेन्द्र कुमार रामायणी जी स्वतः ही एक महान भक्त तथा गुरु भक्त एवं प्रभु–प्रेमी हैं, जिनके द्वारा प्रभु–कृपा से यह ''प्रेमावतार त्रय–समन्वित भाष्य लिखा गया, जिसे पढ़कर भक्तों, प्रेमियों एवं समस्त आग्रह–हीन सामाजिक प्राणियों को प्रेम की पूर्ण झलक तथा प्राप्ति निश्चित होगी, क्योंकि लेख पढ़ते समय महाभावरस में निमग्न इन त्रय प्रेमावतार महापुरुषों का काय–दर्शन नेत्रों के सामने अवश्य ही प्रकट हो जावेगा। प्रेमियों का चरित्र पाषाण– हृदय में भी प्रेम का संचार निश्चित ही कर देता है।

दास के द्वारा समग्र भाष्य पढ़ा जा चुका है, उस समय छोड़ने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। इस भाष्य की भाषा सरल तथा चरित्रनायकों के चरित्र एवं रूप में डुबाने वाली है और प्रभु प्रेमी महापुरुषों के चरित्र में डूबना ही भगवान को हृदय में अवरुद्ध कर लेना है, जो जीवन का लक्ष्य है। अतः यह श्रेय श्री भैया रामायणी को मिला है। वे जिस काव्य, कथा या रस को लेखन या वक्तव्य के द्वारा प्रस्तुत करते हैं, उसे श्रोता या पाठक के हृदय में उतार देते हैं, जो कि उन्हें पूर्णरुप से प्राप्त हैं। अस्तु इसे पाठक पढ़कर प्रेमरस की अनुभूति करें। भगवान श्री जानकीनाथ से मेरी यही प्रार्थना है।

श्री गुरूपद रेणु
भगवान दास

卐卐卐

श्री रामाय नमः

प्रभोराम तेरे चरणों की महिमा अपरम्पपार है।

तेरी चरणतरी जोगहता उसका बेड़ापार है।।

चन्द्रदेव तिवारी
एम.ए. (हिन्दी एवं इतिहास)
साहित्यरत्न
सेवा निवृत्त व्याख्याता
शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूल

हनुमान मंदिर के समीप
ग्राम कुलगढ़ी
जिला–सतना (म.प्र.)

दिनांक 9.11.2009

शुंभाकांक्षी

प्रेमावतार अनन्त विभूषित श्री रामहर्षणदास जी महराज के कृपा पात्र श्री सुरेन्द्र कुमार रामायणी सेवा निवृत्त प्राचार्य एक परम श्रेष्ठ ग्रहस्थ बैष्णव सन्त एक सच्चे अर्थ में शरणागति प्राप्त भगवान् के भक्त हैं।

ममगुन गावत पुलकि शरीरा।

गदगद गिरा नयनबह नीरा।।

भगवान् राम की इस उक्ति को चरितार्थ होते हुए रामायणी जी के जीवन में प्रत्यक्ष साकार रूप में देखा जा सकता है। आप रामचरित मानस के भावुक सरस वक्ता हैं। वक्तव्य के समयकरुण रस की साक्षात प्रतिभूति के दर्शन उनमें किए जा सकते हैं। मानस का आपने विशद अध्ययन किया है और उसी के फलस्वरूप उनमें एक मौलिक विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। सांसारिक व्यथाओं को वे मानस के उद्धरणों द्वारा कथाओं में बदल देते हैं। उनके द्वारा व्यथाओं को हरण किया जाकर एक स्वस्थ चित्त देकर सतसंगी को विदा करना उनके दैनिक जीवन का अंग बन चुका है। रामायणी जी ने सबविधि भरत सराहन जोग में प्रेमावतार त्रय भरत जी श्री लक्ष्मी निधि जी एवं श्री रामहर्षण दास जी का अर्विचनीय प्रेम स्वरूप अपने ग्रन्थ में दर्शाया है। प्राचीन और अर्बाचीन आदर्शों का बड़ा ही सुन्दर ग्रहण करने योग्य वर्णन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलसी के मानस श्री रामहर्षण महराज जी के महाकाव्य ''प्रेम रामायण'' श्री हरि गोविन्द द्विवेदी द्वारा श्री राम हर्षणदास महराज जी के चर्तुधाम यात्रा आदि ग्रन्थों से प्रेमसूल एकत्रित कर उन्हें ग्रहण करने के लिए प्रेरणादायक बनाया है। ग्रन्थ में भावुकता का ऐसा निरूपण है कि सुधीजन भावुक हुए बगैर नहीं रह सकता।

रामायणी जी का यह ग्रन्थ भावुक जन से ही महत कार्य होते हैं को चरितार्थ करता है भावुकता का सीधा सम्बन्ध आत्मा से है जो ईश्वर की अंश निरूपित की गई है आत्मा की सुख शान्ति प्रसन्नता सब कुछ ईश्वर के भजन पूजन अर्चन आराधन, कीर्ति, मनन से ही तो प्राप्त होती है।

रामायणी जी का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं में व्यतीत हो रहा है, जब से मैं उनके सामिप्य में आया हूँ देख रहा हूँ आप आज के युग परापवाद से दूर जीवन यापन कर रहे हैं उनके सामिप्य में रहने के फल स्वरूप इस दुरूह नियम का पालन हो सकने में मुझे सफलता प्राप्त हो रही है। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा साधक नियमावली के अन्तर्गत जो डायरी भरनी पड़ती है उसमें परापवाद त्याग का नियम न कर सकने के कारण डायरी भरना ही बंद कर चुका था।

ग्रन्थ की सफलता उपादेयता ग्रन्थकार की उज्जवल की कीर्तिअक्षुण रहने की कामना के साथ उन्हें समर्पित

परमभागवत स्नेही परमउदार
रामकथा के गायक गुण गरिमा आगार
कैसे करूँ, आपके पावन चरण कमल का बन्दन
पद रज बने आपकी मेरे विनत भाल का चन्दन।

चन्द्रदेव तिवारी
सचिव – हिन्दी साहित्य परिषद
उत्तरी पतेरी, सतना

श्री रामहर्षण मंडल की प्रमुख आरतियाँ

श्री आचार्य महाप्रभु की आरती

वैष्णव वृन्दे वन्द्यं बन्दे श्रीगुरुमधिकमुदारम्।
रसिक जनेषु वरिष्ठं भुवने, प्रेमभक्तिदातारम्।।1।।
शिव स्वरूपमहेतु कृपालुं कल्पतरुं हृदयेशम्।
सततमचिन्त्यं भजे कृपाब्धिं देवमनादिमशेषम्।।2।।
जगदुद्धर्तुं भुव्यवतीर्णं मृदु गौरांग स्वरूपम्।
प्लवमति दुस्तर संसृति जलधौ मंजुल मूर्तिमनूपम्।।3।।
कोऽपिकुतोऽपि कदापि ऋत्तेऽयं लभते नात्मप्रकाशम्।
स मयि करोति कृपां प्रपन्ने कुर्वन् मनसि विलासम्।।4।।
परम मलीनः अतिशय दीनः शिरसा पदे नतोऽहम्।
सिञ्चय सततमुरसि मे स्नेहं हत्वा विषय विमोहम ।।5।।

मैथिल रसाचार्य श्री लक्ष्मीनिधि जी की आरती

कुँवर वर की आरती मनहारी।
श्री लक्ष्मीनिधि कुँअर सलोने, गौर गात द्युति दमकत सोने
भये न हैं, कबहूँ नहिं होने, ऐसे प्रेम पुजारी। कुँअर......।।1।।
जन्मत ते तिलकांकित भाला, रामायुध भुज सोह विशाला,
परम भागवत रघुवर श्याला, मिथिलाराज विहारी। कुँअर....।।2।।
रामप्रेम अहलाद स्वरूपा, योग ज्ञान वैराग्य सुभूपा,
चन्द्रकीर्ति सुखधाम अनूपा, निमिकुल मंडन हारी । कुँअर ।।3।।
आदिशक्ति अग्रज सुखकारी, दुलरावत नित जनक दुलारी,
होत सदा तिनपर बलिहारी, सरसावत रसधारी। कुँअर ।।4।।

卐卐

मैथिली रसाचार्या श्री सिद्धि कुँवरि जी की आरती

आरति करिये सिद्धि कुँवरि की।

महाभाव साम्राज्य स्वामिनी, प्रेम रूपिणी नव नागरिकी।।1।।

श्रीधर कन्या परमानन्या, रस स्वरूपिणी त्रिभुवन धन्या,

शीलमयी लक्ष्मी निधि भामा, रसरूपिणि निकुंज सुन्दरि की ।।2।।

अग्रज प्रिया विदेह सुता की, सरस सुधाफल प्रीतिलता की,

पुत्रवधू मिथिलाधिराज की, नयन पूतरी मिथिलेश्वरि की ।।3।।

तंत्री नाद परम आचार्या, वेणु नृत्य निपुणा परमार्या,

मैथिल जनन करणि कृत कार्या, रघुवर सरहज गुण आगरि की।।4।।

दास किशोर चरण नित ध्याऊँ, पादपीठ ढिग जनम बिताऊँ,

पदत्राण बनि चरण समाऊँ, सिय रघुनंदन प्रेम मूरि की।।5।।

मंगलमूर्ति श्री अंजनिनंदन जी की आरती

आरती श्री अंजनिनंदन की।

राम प्रेम रस-रसिक शिरोमणि, गुणागार सब जगवंदन की।

जन मन रंजन भवभय भंजन, हरण सकल जन दुख द्वन्दून की।

करुणानिधि सुखसिधि सुप्रेमनिधि, काव्यकला निधि रस स्यंदन की।

बाधाहरण काम परि पूरण, शरण सुखद गतिप्रद छंदन की।

'गोविंददास' प्रणतमाँगत प्रभु, परमप्रीति सिय रघुनंदन की।

(श्री रामहर्षण मंडल की आरती भावांजलि से उद्धृत)

卐卐

अनुक्रमणिका

ॐ गुं गुरवे नमः

आत्म-निवेदन

परम प्रेमास्पद परमात्म-स्वरूप पाठक-वृन्द !

श्री मज्जगद्गुरू रामानन्दाचार्य वंशावतंस, भक्त–जन–मानस–राजहंस, निखिल वेद–वेदान्त –निष्णात, प्रस्थान–त्रयी–भाष्य एवं प्रपत्ति–दर्शनकार, श्रीप्रेमरामायण–महाकाव्य–रचनाकार, श्रीअयोध्या–धाम–संत–समाज द्वारा देवर्षि–शिखर–सम्मान– विभूषित, पंच–रसाचार्य, प्रेमावतार, प्रातः स्मरणीय अनंतश्रीविभूषित श्रीरामहर्षणदास जी महाराज का कृपा–पात्र बनने पर इस दास को प्रभु–प्रेम–रस के किंचित् विन्दुओं का रसास्वादन करने का परम सौभाग्य लाभ हुआ। आचार्य–पाद के श्रीचरणों में पहुँचने के पूर्व यह दास श्रीरामचरितमानस के प्रवचनकार के रूप में अनेक मंचों से अपनी वाणी को पवित्र कर चुका था, किन्तु प्रभु–प्रेम से हृदय के रस–सिक्त होने की दशा आकाश–कुसुमवत् दुर्लभ थी। यह दास केवल वैखरी वाणी से राष्ट्र एवं समाज के लिये उपयोगी श्रीरामचरित मानस की शिक्षाओं की व्याख्या करने तक ही सीमित था। जोशीली वाणी से प्रवचन करने के कारण ओजस्वी प्रवक्ता कहलाता था।

मई 1965 में छतरपुर के मानस–सम्मेलन में भारत के प्रख्यात मानस–प्रवक्ता, सरस्वती के वरद पुत्र, अनेक गद्य–पद्य–ग्रंथों के रचयिता मानस–केशरी पं. वाल्मीकि प्रसाद मिश्र, एम.ए.,एम. एड., प्राचार्य (जो अब सेवानिवृत्त होकर स्वनामधन्य संत प्रवर श्री अवधकिशोर दास हैं) से भेंट हुई। उनके ही माध्यम से मुझे प्रातः स्मरणीय आचार्य महाप्रभु की शरणागति प्राप्त होने का परम सौभाग्य–लाभ हुआ।

आचार्य श्री की अहैतुकी कृपा से अब प्रभु–प्रेम के छींटों से हृदय रस–सिक्त हुआ; तो करुण–रस की धारा में डूबने उतराने की स्थिति बनने लगी। अब यह दास श्रीभरत–चरित्र पर प्रवचन करते हुए करुणा–विगलित होने लगा। फल–स्वरूप अनेक सुधी श्रोता भी करुण–रस की धारा में भाव–विभोर होकर प्रेमाश्रु–विभूषित देखे जाने लगे । तब मुझसे प्रायः श्रीभरत–चरित्र पर प्रवचन करने का आग्रह किया जाने लगा। सन 1953 से ही श्रीरामचरित्रमानस के विविध प्रसंगों पर इस दास के लेख मानस–मणि, कल्याण, अवध–संदेश, चित्रकूट–सत्संग एवं

तुलसी–दल आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। किन्तु कभी एक ही विषय पर पुस्तक–रचना का विचार ही नहीं उठा, तो उसे कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न ही नहीं था।

अन्ततः शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य पद से सेवा–निवृत्त होकर तीर्थाटन, प्रवचन एवं यदा कदा स्फुट लेख लिखने में कालयापन करने लगा। आयु के सत्तर का दशक पूर्ण करके पचहत्तरवें वर्ष में शरीर की बहुत कुछ शिथिल दशा में जैसे तैसे विश्राम करने लगा। अब मेरी समझ में मेरे लिए कोई विशेष करणीय कार्य शेष नहीं रह गया था।

ऐसे समय में मेरे कतिपय प्रेमी बन्धुवर मुझसे प्रेमाग्रह पूर्ण निवेदन कर रहे थे कि अब आप **"सब विधि भरत सराहन जोगू"** विषय पर पुस्तक लिखिये। उनका आग्रह था कि "यह कार्य केवल आप ही सम्पन्न कर सकते हैं क्योंकि इस विषय का प्रतिपादन अपनी वाणी द्वारा सफलता पूर्वक आप कर ही रहे हैं। उसी विषय को चिरस्थायी बनाने के लिए लेखनी का माध्यम अपनाइये।" शरीर की शिथिलतावश मैं आलसी प्रमादी हो गया था। अतः प्रेमियों के आग्रह को मैं बहुत समय तक टालता रह गया। नेत्र ज्योति क्षीण हो रही थी पठन पाठन लेखनादि में कठिनाई भी आ रही थी। ऐसी परिस्थिति में भी मुझे प्रेमियों के विशेष आग्रह पर लेखनी उठानी ही पड़ी। कहने का आशय यह है कि मैं स्वेच्छा से इस पुस्तक के लेखन कार्य में प्रवृत्त नहीं हुआ था, वरन् प्रेमियों के प्रेमाग्रह ने इस पुस्तक की रचना करा ली है। अतः इस रचना के मूल में प्रेमतत्व ही था। उसी प्रेमतत्व की ज्योति ने सम्पूर्ण रचना को प्रकाशित किया है। मुझे केवल माध्यम बनाया गया है।

काव्य–कलानिधि श्रीराम–रस–रसिया श्री अंजनी–नंदन की वंदना करके लेखन–कार्य में प्रवृत्त हुआ। लेखन–कार्य के लिए उत्तमकोटि की डायरी मेरे गुरु–बन्धु श्रीरमाशंकर निगम ने उपलब्ध कर दीं, जिससे मेरा कार्य सुगम हो गया। अब मैंने निरन्तर चार माह तक इसी शुभकार्य में प्रवृत्त रहने ही भावना से बाहर जाने का विचार त्याग कर कोई प्रवचन–कार्यक्रम स्वीकार नहीं किया, वैसे भी वर्षा ऋतु के कारण यदा कदा ही प्रवचन के आमंत्रण प्राप्त होते हैं।

ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय के अनुसार प्रेम–मूर्ति श्रीभरत का वैशेष्य प्रतिपादन किया जाना था एतदर्थ मैंने अपने सद्गुरूदेव प्रेमावतार आचार्यपाद के प्रेम–रस–सिद्ध महाकाव्य श्री प्रेमरामायण तथा प्रेम–रस–प्रपूरित गीतिकाव्य प्रेम–वल्लरी का आश्रय लिया, ताकि प्रेमतत्व के स्वरूप तथा

प्रेमरस–महिमा का निरूपण करने की पात्रता प्राप्त हो सके। इस सुदृढ़ आश्रय को ग्रहण कर लेने से प्रेममूर्ति भरत की रहनि का चित्रण तथा भगवान राम से उनकी विशिष्टता का दर्शन कराना सुगम हो गया। मुझे अपनी लेखनी को गतिशील बनाने के लिए निरन्तर उक्त ग्रंथ–रत्नों से मार्गदर्शन मिलता रहा।

प्रेमावतार श्री भरत की महिमा को प्रकाशित करने वाली यह रचना प्रेम–तत्व की विशद व्याख्या से प्रारंभ की गई है। प्रथम अध्याय में **"प्रेमैव परमेश्वरः"** द्वितीय अध्याय में **"प्रेम में परमेश्वर की प्रतिष्ठा"** तृतीय अध्याय में "प्रेम परमेश्वर से भी विशिष्ट" शीर्षक से इस रचना का केन्द्र–बिन्दु प्रेम तत्व को बनाया गया है। इस प्रेम–तत्व के मूर्तिमान स्वरूप प्रेमावतार श्री भरत के साथ श्रीप्रेमरामायण महाकाव्य में वर्णित प्रेमावतार श्रीरामश्यालपद प्रतिष्ठित श्रीलक्ष्मीनिधि वर्णित हुए हैं। साथ ही वर्तमान समय में प्रेमावतार आचार्यपाद स्वामी श्रीरामहर्षणदास जी का चरित्र चित्रण किया गया है, इस प्रकार यह ग्रंथ प्रेमावतार–त्रय–समन्वित प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे प्रभु–प्रेमेच्छु भावुक भक्तों को प्रेमतत्व हृदयंगम करने में सरलता होगीं। यही तो मानवजीवन का चरम लक्ष्य है।

अनेक मनस्वी विद्वानों द्वारा श्री भरत–चरित्र पर ग्रंथ रचनायें प्रस्तुत हुई हैं, किन्तु मेरे प्रतिपाद्य–विषय

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।

2/326/3

पर मेरी दृष्टि में कोई पुस्तक नहीं आई है। अपने रामायणी मित्रों से भी पूछा कि क्या कोई ऐसी पुस्तक सुलभ है, जिसमें श्रीराम एवं श्रीभरत की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गई हो? सभी मित्रों ने नकारात्मक उत्तर दिया। अतः मेरे लिए तुलनात्मक–समीक्षा–पूर्ण यह अनुसंधानकार्य एकदम नवीन शैली से रचना करने का अनूठा प्रयास था। मैं निरन्तर चिन्तन मनन में उन प्रसंगों को स्मृतिपटल पर उभारता रहा, जिनमें श्रीराम एवं श्रीभरत की तुलना प्राप्त होती रही है। यथा–निषादराजगुह का कथन

कुसल मूल पद पंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

2/195/7–8

इसी प्रकार श्रीराम के लिए केवल अतिथि कहा गया–

"मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये" 2/125/3

जबकि श्रीभरत के लिए अतुलित अतिथि कहा गया–

कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि रामलघुभाई ।।

2/214/2

तथा

तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात ।। 2/216

इत्यादि

यह तो पूर्व से ही निर्धारित था कि मुझे क्रमबद्ध रूप से भरत–चरित्र प्रस्तुत नहीं करना है, क्योंकि उस दिशा में मनस्वी विद्वानों द्वारा बहुत कुछ लिखा जा चुका है। निर्धारित विषय के अनुसार मेरे लिए यह प्रतिबन्ध था कि मेरे द्वारा श्रीराम एवं श्रीभरत सम्बन्धी केवल तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की जावे तथा उन प्रसंगों में जहॉ कहीं श्रीभरत की विशिष्टता श्रीरामचरित मानस में चित्रित की गई हो, केवल उन्हीं प्रसंगों को लेखनी का विषय बनाया जावे।

तुलनात्मक विवेचना पूर्ण निबन्ध होने के कारण इसमें क्रमबद्ध कथानक नहीं लिखा गया है। इसमें बाद के घटना–क्रम के प्रसंग पहले मिल जावेंगे तथा प्रारंभिक घटनायें बाद में भी मिलेंगीं। साथ ही अनेक दोहे चौपाई युक्त उद्धरणों की पुनरावृत्ति भी मिलेगी, क्योंकि तत्सम्बन्धी तुलना प्रस्तुत करने हेतु ऐसा करना आवश्यक होता है।

एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि एक प्रवचनकर्ता द्वाराप्रस्तुत यह निबन्ध प्रवचनशैली आग्रह–ग्रस्त होने के कारण किसी शब्द–विशेष, वाक्यांश या घटना–विशेष से सम्बन्धित अन्यान्य प्रसंग भी दिग्दर्शित कराते हुए आगे बढ़ता है। यथा "धाम–काम" शब्द युग्म की विवेचना प्रस्तुत करते समय तत्सम्बन्धी अनेक दृश्य चित्रित किये गये। आशा है सुधी पाठक इन तथ्यों को ध्यान में रखेंगे, तो उन्हें पूर्वापर प्रसंग–लेखन अटपटा प्रतीत नहीं होगा एवं किसी प्रसंग सम्बन्धी अनेक दृष्टांतों के उद्धरणों को वे प्रसंगान्तर प्रकरण नहीं मानेंगे। बाल्य–काल से लेकर वृद्धावस्था तक के सुदीर्घकालीन अध्ययन की पृष्ठभूमि में यह लेखन–कार्य प्रारंभ हुआ तथा इधर चार माह तक मैं निरन्तर चिन्तन, मनन, लेखन, संशोधन, परिवर्द्धन में तत्पर रहा हूँ। अतः यह निबन्ध मेरी दीर्घकालीन साहित्य–साधना तथा इस रचना से सम्बन्धित तपस्या के फलस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस बीच एक विशेष कार्य से मुझे पन्ना जिलान्तर्गत शाहनगर जाना पड़ा, जहाँ मैं कई वर्षों

तक प्रधानाध्यापक तथा प्राचार्य पद पर शिक्षण–कार्य करता रहा हूँ। वहाँ मेरे प्रिय छात्र–शिष्य श्री दामोदर प्रसाद तिवारी, एम.ए., बी.एड., ब्लाक–श्रोत–शिक्षा –समन्वयक (जो स्वयं श्रीमद् भागवत तथा श्रीरामचरित मानस पर प्रवचन करते हैं) के आवास पर धार्मिक ग्रंथों का प्रशंसनीय संग्रह है। उनके पास से श्रीमद् भागवत महापुराण तथा श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण के संदर्भित श्लोकों के उद्धरण अंकित करने की सुविधा प्राप्त हो गई। उन्होने इस निबन्ध की पाण्डुलिपि का प्रथम–दृष्टया अवलोकन किया तथा कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये, जिनके अनुसार इस निबन्ध को पुनः परिवर्द्धित किया गया।

निबन्ध को प्रामाणिक बनाने हेतु आर्ष धार्मिक ग्रंथ श्रीमद् भागवत महापुराण, श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद् भगवद्गीता तथा देवर्षि रचित नारदीय भक्ति सूत्र आदि से एतद् विषयक श्लोक व्याख्या सहित प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे तो निबन्ध प्रमुखतः श्रीराम चरित मानस पर आधारित है, किन्तु उन प्रसंगों की पुष्टि हेतु गोस्वामिपाद रचित अन्यान्य ग्रंथ गीतावली रामायण, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, वरबै रामायण आदि से संदर्भित अंश प्रस्तुत किये गये हैं। श्रीरामचरित मानस से प्रस्तुत उद्धरणों के अंकों में पहला कांड के क्रमांक का बोधक, दूसरा दोहा क्रमांक का बोधक तथा तीसरा उस दोहे के अन्तर्गत पहले आई हुई चौपाइयों का बोधक है। इन उद्धरणों के लिए श्रीरामचरित मानस ग्रंथ का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गई है, क्योंकि मूलतः निबन्ध श्रीरामचरित मानस पर ही आधारित है ।

निबन्ध के रसमय सर्वोत्तम अंश श्रीप्रेमरामायण महाकाव्य के वे प्रसंग हैं, जो आवश्यकतानुसार कतिपय अध्यायों में यथास्थान उद्धृत किये गये हैं। साथ ही अध्याय तेरह में "श्रीप्रेमरामायण में वर्णित भरत–सिद्धांत" एवं अध्याय चौदह में "श्रीप्रेमरामायणान्तर्गत श्रीराम भरत–संवाद" विस्तृत रूप से अंकित किये गये हैं। श्रीप्रेम रामायण की भाषा प्रसाद गुणयुक्त सुबोध है, जिसे समझने के लिए पाठकों को सक्षम मानकर उनकी व्याख्या प्रस्तुत करके ग्रंथ का कलेवर नहीं बढ़ाया गया है।

आचार्य महाप्रभु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की संक्षिप्त झाँकी अध्याय दस में प्रस्तुत की गई है तथा आचार्य श्री की उपासना–पद्धति का चित्रण अध्याय पन्द्रह में प्रस्तुत किया गया है। तत्सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने हेतु संतप्रवर श्री अवधकिशोरदास रचित "श्रीरामहर्षण–लीला–पीयूष" एवं श्री हरिगोविन्ददास द्विवेदी लिखित "अनंत श्रीविभूषित स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज का चतुर्धाम–यात्रा–वृत्त" आधार भूत ग्रंथ–रत्न बने हैं। आशा है सुधी पाठक इन अंशों के

अनुशीलन से प्रेरणा ग्रहण करके श्री प्रेमरामायण महाकाव्य को प्राप्त करके अध्ययन में तत्पर हो सकेंगे। आचार्य श्री प्रणीत प्रेम–वल्लरी एवं विनय–वल्लरी गीतिकाव्य के सम्बन्धित पद भी प्रस्तुत किये गये हैं, ताकि पाठक इन गीति काव्यों को भी प्राप्त कर समग्र अध्ययन कर सकेंगे। आचार्य श्री की रचनाओं के अतिरिक्त इस निबन्ध से सम्बन्धित अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों की रचनायें भी यथास्थान प्रस्तुत की गई हैं।

मैंने श्रीरामचरित–मानस पर अनेकानेक व्याख्याओं (मानस–पीयूष से लेकर गूढ़ार्थ–चन्द्रिका तक) तथा अनेक विद्वानों की मानस–सम्बन्धी रचनाओं का विशेष अध्ययन किया है, क्योंकि "साहित्य–रत्न" एवं एम. ए. करने हेतु महाकवि गोस्वामी तुलसीदास को ग्रहण किया था। अस्तु इस निबन्ध के चिन्तन मनन के समय वही भाव–विचार स्मृति में उभर कर लेखनी का विषय बने हैं। अतः सभी रामायणी लेखक विद्वानों एवं प्रवचनकारों के भावों का प्रसाद ग्रहण कर यह निबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। वस्तुतः "साधूच्छिष्टं हि मे सर्वम्" की सूक्ति चरितार्थ हो रही है। यह संभव नहीं है कि उन सबका पृथक् पृथक् नामोल्लेख किया जा सके। मैं उन समस्त ज्ञाताज्ञात मनस्वियों का हृदय से आभारी हूँ, तथा जिन मनस्वी विद्वानों की रचनाओं के अंश उद्धृत किये गये हैं, उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

मैं "युगतुलसी" उपाधि से विभूषित पद्म–भूषण पं. रामकिंकर उपाध्याय के समग्र ग्रंथों के अध्ययन में प्रवृत्त रहा हूँ। अपने प्रवचनों में भी पूज्य महाराज श्री के भावों का विशेष आधार लेता हूँ। अतः स्वाभाविक है कि इस निबन्ध में अनेक स्थलों पर पूज्य महाराज श्री के भावों की छाया दृष्टिगोचर होगी। पूज्य महाराज श्री के चरणाश्रित भक्तों द्वारा जबलपुर से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका "रामायणम् संस्कृति" के श्रद्धांजलि अंक सं. 26 माह नवम्बर 2002 में मैंने एक छप्पय द्वारा उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि प्रस्तुत की थी। इस निबन्ध के आत्मनिवेदन में उसे पुनः प्रस्तुत करके पूज्य महाराज श्री के प्रति मैं हार्दिक आभार श्रद्धांजलि प्रकट कर रहा हूँ।

हे मेरे गंतव्य गमय गामक गतिदाता ।
परम भागवत संत तत्वविद बुद्धि-विधाता ।।
हे "युग तुलसी" देन तुम्हारी अतुल अनूठी ।
जो जो देंय उपाधि सभी लगती हैं जूठी ।।
आप आप ही सम रहे, कीर्ति सकल दिशि व्यापिनी ।
श्री चरणों में कोटिशः प्रणत सुरेन्द्र रामायणी ।।

इस ग्रंथ के अठारह अध्यायों के अंत में एक परिशिष्ट "चतुर्युग के प्रमुख प्रेमाचार्यों की स्तुति आरती" शीर्षक से संलग्न किया गया है । इसका आधार श्री रामहर्षण–मंडल का अखंड–एकान्तिक–संकीर्तन कार्यक्रम है । एकान्तिक–संकीर्तन के विषय में अध्याय तेरह एवं पन्द्रह में प्रकाश डाला गया है । श्रीरामहर्षण–मंडल का परिचय गुरु–बन्धु श्रीब्रजकिशोरदास के रचित एक श्लोक में प्राप्त होता है ।

हरिनामध्वनिना झंकृतं, विपुलैर्महद्भिर्बन्दितं ।
प्रेम-स्वरूप-प्रदायकं, प्रेमामृतस्यास्वादकम् ।।
श्रीरामहर्षणदेव गुरूणा, पालितं संस्थापितं ।
प्रणमामि परमानंददं, श्रीरामहर्षण मण्डलम् ।।

श्रीरामहर्षण–मंडल के विशिष्ट आयोजन अखण्ड–एकान्तिक संकीर्तन के प्रारंभ में चारों युगों के प्रमुख प्रेमाचार्यों का षोड़शोपचार पूजन सम्पन्न किया जाता है। उसमें सभी प्रेमाचार्यों का पृथक् पृथक् आवाहन वंदना–स्तुति करके पूजनोपरान्त उनकी सामूहिक रूप में आरती सम्पन्न की जाती है। इसके लिए श्रद्धेय भइया श्री वाल्मीकि प्रसाद मिश्र मानस–केशरी जी ने दो दो पंक्तियों में स्तुतियों की रचना की थी। इन स्तुतिओं को परिवर्द्धित करके छप्पय रूप में परिशिष्ट भाग में प्रकाशित किया गया है।

श्रीरामहर्षण–मंडल के गण्यमान विद्वत्–वर्ग में रीवा के अवस्थी–दम्पति डा0 गंगानारायण अवस्थी, एम.ए., एम.एड., एलएल.बी., डी.एच.पी एवं डा0 श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी, एम.ए., पी.एच.डी. उल्लेखनीय हैं। इन दम्पति द्वारा अनेक शोधार्थियों के पी. एच. डी. शोध–प्रबन्धों का निर्देशन एवं संशोधन सम्पन्न किया गया है। तदनुसार मैंने भी अपना यह लघु प्रबन्ध उनके समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने अमूल्य समय में इस प्रबन्ध का भाषागत संशोधन सम्पन्न करने की महती कृपा की। इस प्रकार इस प्रबन्ध के प्रस्तुतिकरण में संतप्रवर श्री अवधकिशोरदास जी के "श्रीहर्षण– लीला–पीयूष" वरिष्ठ गुरु बन्धुवर श्री हरिगोविन्ददास द्विवेदी जी लिखित "चतुर्धाम– यात्रा–वृत" तथा श्री अवस्थी–दम्पति का महत्वपूर्ण योगदान है। दूसरे शब्दों में यदि यह कहें कि यह श्रीरामहर्षण–मंडल का सामूहिक सत्प्रयास है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अस्तु इस विषय में आभार प्रकट करना अनौचित्यपूर्ण प्रतीत होता है, जैसे यदि अपने सिर में खुजलाहट उठे तब अपना हाथ उसे खुजला दे तो क्या सिर अपने हाथ के प्रति आभार प्रकट करे कि तुमने मुझे खुजलाकर कृतज्ञ कर दिया है ? ठीक ऐसी ही स्थिति

अपने समस्त वरिष्ठ गुरुबन्धुओं के प्रति यह दास अनुभव कर रहा है।

मेरे मान्य उक्त महानुभावें ने तथा मंडल के सकल विधि कैंकर्य–निपुण बाल ब्रह्मचारी संत श्री भगवान दास जी ने इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि का अनुशीलन करके इसके विषय में अपना शुभाशीषमय अभिमत प्रदान कर ग्रंथ को महिमा मंडन करके मुझे पुनः कृतार्थ किया है। ये चारों शुभाशीष मेरे लिए "चारि पदारथ भरा भँडारू" तुल्य बन गये हैं। इन्हें ग्रंथ के प्रारंभ में प्रकाशित किया गया है।

अब ग्रंथ की प्रकाशन प्रक्रिया प्रारंभ हुई। वर्षों पूर्व मेरा प्रथम ग्रंथ "पौड़ी की श्रीसीताराम विवाहोंत्सव समैया पद्धति" मेरी हस्तलिपि की पाण्डुलिपि से मुद्रित हो गया था। अब वैज्ञानिक विकास के युग में मुद्रकों ने पाण्डुलिपि को कम्प्यूटर पर टाइप कराकर उसकी सी.डी. समेत प्रस्तुत करने को कहा। इस कम्प्यूटरीकरण कार्य में मेरा कनिष्ठतम पुत्र चिरंजीव आनंद निपुण है। परन्तु वह रायपुर (छत्तीसगढ़) मंत्रालय में शासकीय सेवा में नियुक्त है। हम दोनों के निवास की दूरी का व्यवधान प्रकाशन के विलम्ब का कारण बना। चार छह माह में उसका सतना आना जाना हो पाता था। वह जब टाइप की हुई प्रतिलाता था, तो तीन बार के प्रयास में टाइप की हुई शुद्धप्रति तैयार हो पाई, किन्तु इस लम्बी प्रक्रिया में ग्रंथ का प्रकाशन प्रायः डेढ़ वर्ष विलम्बित हो गया। ग्रंथ के प्रकाशन का गुरुतर भार श्रीरामहर्षण मंडल सतना ने सँभाल लिया। संप्रति मंडल के सक्रिय सदस्यों में प्रमुख है श्री चिन्तामणि त्रिपाठी, श्री सनतकुमार मिश्र, श्री अनुराग द्विवेदी, श्रीरमाशंकर निगम, श्री लक्ष्मी प्रसाद गर्ग, श्री रमाकांत मिश्र, श्री छोटे लाल दुबे, श्री विकास शुक्ल, श्री विवेक श्री जगदीश खरे, श्रीमती सुधा सिंह, श्रीमती शीला दुबे आदि श्रमपूर्ण मुद्रण कार्यहेतु मेरे गुरुबन्धु श्रीरमा शंकर निगम विशेष सहायक बने। इस कार्य में मेरा द्वितीय पुत्र चिरंजीव विवेक संगीत प्रभाकर उनका सहयोगी बना।

मेरे ज्येष्ठ पुत्र चि. संतोष तथा तृतीय पुत्र चि. अनुराग ने भी अपने स्तर पर सक्रिय कार्य सम्पन्न किया।

आर्थिक व्यवस्था में मेरे गुरु बन्धु श्री रमेश कुमार त्रिपाठी रीवा, श्री दुर्गा प्रसाद अग्रवाल रायपुर, श्री बाबूलाल विश्वकर्मा सतना, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त प्रधानाध्यापक श्री रुद्र सिंह यादव देवेन्द्र नगर (पन्ना) आदि ने योगदान दिया।

इस बीच सौभाग्य से श्री गणेशोत्सव समारोह में प्रवचन करते हुए मेरा सम्पर्क आवासीय सरस्वती विद्यापीठ, सतना के व्यवस्थापक महोदय श्री सम्पत कुमार धूत (माहेश्वरी) जी से हो

गया था। उनका सतना आर्ट प्रिंटर्स अनेक धार्मिक ग्रंथों का उल्लेखनीय प्रकाशन करते हुए नगर में विख्यात है। उनके सौजन्य से मेरे इस ग्रंथ का मुद्रण कार्य अल्प व्यय में भली भाँति प्रशंसनीय रूप में सम्पन्न हुआ है। तदर्थ मैं हार्दिक रूप से उनका आभार प्रकट करता हूँ।

श्री आचार्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से लिखे गये इस ग्रंथ को श्रीरामहर्षण–मंडल की सेवा में समर्पित करते हुए संतों की यह उक्ति स्मृतिपटल पर उभरी–

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ।।

तदनन्तर महात्मा दादूदयाल की यह उक्ति सटीकलगी–

तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिण्डरू प्रान ।
सब कुछ तेरा, तू ही मेरा, यह दादू का ज्ञान ।।

पुनः वैष्णवरत्न रूपकला जी के शब्दों में जब भक्त का सब कुछ प्रेमास्पद का ही है, तो वह उसे क्या अर्पण करे ।

प्राण तोर, मैं तोर, मन, बुधि, चित, यश तोर सब ।
एक तु ही तो मोर, काह निवेदौं तोहिं पिय ।।

इस ग्रंथ के लेखन काल में मुझे निरन्तर श्रीभरत–चरित्र लेखन के बहाने उन प्रेममूर्ति महाभागवत के चिन्तन में निरत रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं धन्यातिधन्य बन गया । मेरा विश्वास है कि जो सुधी पाठक इस निबन्ध का दत्तचित्त होकर पूर्णमनोयोग से अनुशीलन करेंगे, वे भी श्रीभरत–चरित्र की फलश्रुति के अनुसार प्रभु–प्रेम प्राप्त कर परम श्रेय के भागी बनेंगे।

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीयराम पद प्रेमु, अबसि होइ भवरस बिरति ।। 2/326

प्रेमोन्मत्तानां किंकरः
कौशल किशोर दासः
(सुरेन्द्र रामायणी)

प्रभु पाँवरी उपासक श्रीभरत जी
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।
पृष्ठ सं. 170

वन्दे तं हि रसाकारं रामोपानत्प्रपूजकम

पृष्ठ सं. 180

ऊँ गुं गुरवे नमः

सब बिधि भरत सराहन जोगू

अध्याय - एक

प्रेमैव परमेश्वरः

श्रीराम पादद्वय पादुकान्तं, संसक्तचित्तं कमलायताक्षम्।
श्यामं प्रसन्न वदनं कमलावदाभं, शत्रुघ्नयुक्तमनिशं भरतं नमामि।।

ब्रह्म अनिवर्चनीय है। वह "एकमेवाद्वितीयम्" है। अर्थात् उस जैसा कोई नहीं है। अस्तु अनुपमेय है। श्रीमद् भगवद्गीता में जिज्ञासु अर्जुन ने भगवान कृष्ण का विराट विश्वरूप देखने के पश्चात् आश्चर्यचकित दशा में निवेदन किया।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो, लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभाव। 11/43

अर्थात् हे अनुपम प्रभाव वाले परम पुरूष तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। फिर अधिक तो कोई कैसे हो सकता है। यजुर्वेद में भी यही उद्घोष है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति नाम महयशः। यजुर्वेद 32/3

श्रीमद्भागवतमहापुराण में परम हंस शुकदेव जी कहते हैं।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्जयाऽऽन्त, लीलातनोरधिक साम्य विमुक्त धाम्नः।
रक्षोवधोजलधिवन्धनमृस्त्रपूगैः, किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ।। 9/11/20

अर्थात् हे परीक्षित् भगवान के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है। फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से ही यह लीला विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थिति में रघुवंश शिरोमणि भगवान श्री राम के लिये यह कोई बड़े गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र शस्त्रों से राक्षसों को मार डाला या समुद्र पर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओं को मारने के लिये बंदरों की सहायता की भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही है। श्रीरामचरित मानस में तपोपूत महर्षि अत्रि यही बात कहते हैं –

जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ताकरसील कस न अस होई।। 3/6/8

श्री राम के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए श्री काकभुसुंडि अपने श्रोता गरूड़ जी से इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं।

निरूपम न उपमा आन, राम समान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटिसत खद्योत सम रबि, कहत अति लघुता लहै।। 7/92 /छंद

जब महाराज स्वायंभुव मनु की सुदीर्घकालीन तपस्या से द्रवित होकर परात्पर परब्रह्म सर्वव्यापी परमप्रभु ने उनके मनोवांछित स्वरूप सौन्दर्य सुधा सागर कोटिकाम कमनीय नयनाभिराम श्रीरामरूप दर्शन कराने के उपरान्त बरदान माँगने को कहा, तब स्वायंभुव मनु ने याचना की

दानि शिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सति भाउ ।
चाहउँ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ ।। 1/149

प्रत्युत्तर में कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ प्रभु भगवान राम स्वयं उनके पुत्र रूप में अवतार ग्रहण करने का वचन देते हैं।

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ।। 1/150/2

उदार शिरोमणि प्रभु ऐसा अनुपम वरदान देकर भी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने विचार किया कि महाराज मनु की याचना में तो समान पुत्र की चाह है। यदि मैं अकेला गया अपने समान पुत्र न ले गया तो याचनानुसार शब्दशः पूर्ति न होगी। निदान उन्होंने विचार किया कि भक्तगण मेरे प्रेमतत्व को मेरे प्रतिरूप तत्सम मान्यता देते हैं। प्रसिद्ध उक्ति है–

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
दोनों मिलकर यों लसैं, ज्यों सूरज अरू धूप।।

चैतन्य चरितामृत में प्रेम को पंचम पुरूषार्थ या परम फल कहा गया है –

पंचम पुरूषार्थ सेई प्रेम महाधन ।
कृष्णेर माधुर्य रस कराय आस्वादन ।।

अर्थात् भगवान कृष्ण के माधुर्य रसास्वादन का एकमात्र साधन प्रेम है। अतः उसे चारों पुरूषार्थों से भी परे पंचम पुरूषार्थ अथच परम पुरूषार्थ कहा गया है।

जाको लहि कछु लहन की चाह न हिय महँ होय ।

जयति जगत पावन करन, प्रेम बरन यह दोय ।।

सत्य नारायणं "कविरत्न" – ने कहा है –

निरत विचारन जोग, रूचत उपदेश यही उर ।
परमेसुर मय प्रेम, प्रेम मय नित परमेसुर ।।

जब भक्त ईश्वर कृपा से शुद्ध प्रेम के दिब्य प्रकाश को पाकर बिषयाभिमुखी प्रवृत्ति को ईश्वराभिमुखी करने में समर्थ हो जाता है, तब हृदय की सहज प्रवृत्ति राग की वासनात्मक अवस्था का उन्मुखीकरण करके भावनात्मक अवस्था में अनुराग स्थित हो जाता है। उस अवस्था की संज्ञा "प्रेम" है। "त्वं" का "अहं" पर उत्सर्ग अर्थात् "त्वं" का "अहं" के लिये प्रयोग "मोह" है। और "अहं" का "त्वं" के लिये उत्सर्ग अर्थात् "अहं" का "त्वं" की सेवा में नियोजित कर देना "प्रेम" है। मोह में स्वार्थ और लोभ छिपा रहता है, जब कि प्रेम में त्याग और उदारता की भावना रहती है। मोह वासना प्रधान होता है, प्रेम समर्पण प्रधान। स्वत्व की समाप्ति जितनी अधिक होगी प्रेम उतना ही तीव्र होगा। प्रेम में अहं भाव का लेश मात्र भी स्थान नहीं है।

पीवा चाहै प्रेम रस – राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़्ग – देखा सुना न कान।।
प्रीति सु ऐसी जान – काँटे की सी तौल है।
तिल भर चढ़ै गुमान – तौ मन सूई डगमगै।।

प्रेम एक महायज्ञ है। समस्त स्वार्थ इस महायज्ञ में आहुत करने को तत्पर हुए बिना प्रेम यज्ञ पूर्ण नहीं होता प्रेम ही मानव चेतना का विकास करके उसे विश्व चेतना में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम से ही मानव महामानव बन जाता है। साधक जब पंच कोशों–अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश की साधना सम्पन्न करने के उपरान्त अंतिम आवरण आनन्दमय कोश का अनावरण करने में समर्थ हो जाता है तब उस आनन्द मय कोश के केन्द्र बिन्दु प्रेमानन्द' को प्राप्त करता है। यह प्रेमानन्द ब्रह्मानंद से अनन्त गुना श्रेष्ठ होता है।

आचार्य श्री रूप गोस्वामी अपने "हरिभक्ति रसामृत सिन्धु" में प्रतिपादित करते हैं कि ब्रह्म की आयु के पचास वर्ष पर्यन्त समाधि में ब्रह्मानन्द का अनुभव भक्ति–सुधा– समुद्र के लघुतम् परमाणु के बराबर तुलनीय नहीं है।

ब्रह्मानन्दों भवेदेष चेत्पराई गुणी कृतः ।

नैति भक्ति सुखाम्भोद्यैः परमाणु तुलामपि ।।

अस्तु प्रेम भूलोक का अमृत है। इसकी एक बूँद भी प्राप्त हो जाने पर जीवन धन्य हो जाता है। जबकि इससे तृप्ति तो होती ही नहीं है। सत्यनारायण "कवि रत्न" प्रेम के लक्षण अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं।

अगम अनिर्वचनीय परे जासों कछु बसना ।

बरनत रस रमनीय रहत रसना में रसना ।

अचला अवसि रतन गर्भा बसुमती सुहावति ।

किन्तु प्रेम रस मती धारि यह रसा कहावति ।।

अर्थात् यह प्रेम रस अगम्य है, वर्णनातीत है। इस रमणीय रस का पूर्ण वर्णन करने में रसना भी असमर्थ है। वर्णन इस लिये सम्भव नहीं कि वर्णन करते समय रसना ने तो प्रेम रस का रसास्वादन किया ही नहीं है। तो वह रसहीन रसना प्रेम तत्व का रसास्वादन अन्य को कैसे करावे। पृथ्वी नाना रत्नों की आकर होने से अवश्य ही रत्नगर्भा बसुमती संज्ञा से सुशोभित है। किन्तु इसे "रसा" संज्ञा तो प्रेम रस से ओत प्रोत होने के नाते ही प्राप्त हुई है।

प्रेम रस इसलिये भी वर्णनातीत है कि प्रेम की प्राप्ति हुए बिना तो कोई शुद्ध प्रेम को जानता नहीं और प्रेम प्राप्ति हो जाने पर वह अपने मन से हाथ धो बैठता है। अब वर्णन करे तो कौन? इसी प्रकार जैसे जल में ऊपर ही ऊपर डूबने उतराने वाला तो बोल सकता है, पर जो गहरे जल में निमग्न है वह कैसे बोलेगा।

डूबै सो बोलै नहीं - बौले सो अनजान ।

गहरो प्रेम समुद्र कोउ डूबै चतुर सुजान ।।

प्रेम रस के वर्णनातीत होने के तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस सर के मधुर जल की उपमा देते हुए इस प्रकार भावाभिव्यक्ति की है।

प्रेम भगति जो बरनि न जाई ।

सोइ मधुरता सुसीतलताई ।। 1/36/06

प्रेम लक्षणा भक्ति की ब्याख्या महात्मा सुन्दर दासजी के शब्दों में

कबहूँ हंसि उठि नृत्य करै, रोवन फिर लागै ।

कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगै ।।
कबहूँक हृदै उमंग बहुत ऊंचे सुर गावै ।
कबहुँक हवै मुख मौन गगन जैसों रहि जावै ।।
चित्त बित्त हरि सों लग्यो सावधान कैसे रहै ।
यह प्रेम लक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनो "सुन्दर" कहै ।।

बिना मौत के ही जीवन मरण के बीच की दशा है किन्तु क्या यह दशा भूत–ग्रस्त की भाँति दुख दायक है ? ऐसा सोचना भी महान अनर्थकर होगा। अरे प्रेमी भक्त का रोना भी तो आनंद परिपूर्ण होता है। उसके तीव्र ताप और ज्वाला की जड़ में एक रसमयी शीतलता ही है। उसका दुख व वेदना भी प्रेम भाव की अनुभूति ही है। हर दशा में सदा सर्वदा प्रेमानंद ही है यह प्रेम का नशा चढ़ने पर अन्य किसी नशे की आवश्यकता नहीं रह जाती। महात्मा कबीर के शब्दों में –

कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रम रहा और अमल क्या खाय ।।

देववाणी संस्कृत का कवि जब काव्य रस की नाना भाव तरंगों का निरूपण करता है तो वह देखता है कि प्रेम में तो काव्य के सभी रस एवं भाव समाहित हो गये हैं। कथन दर्शनीय है।

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंग इव वारिधौ ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेम संज्ञकः ।।

उक्त कथन सचमुच प्रेम रस का सच्चा परिचायक है। यथार्थ ही प्रेम में समस्त रस तथा समस्त भाव उसी प्रकार तरंगित होते रहते हैं जैसे समुद्र में नाना लहरें उठती तथा लय होती रहती हैं। प्रेम इस एक शब्द में ही समस्त जीवन की परिधि आ जाती है। यह एक शब्द ही बृहद् ग्रन्थ के समान है। प्रेमी के एक आँसू में विशाल वारिधि लहराता है। उसकी एक–एक आह विशाल बवण्डर उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है। उसका स्पर्श मात्र विद्युत के समान प्रभावशाली होता है। उसके एक–एक क्षण का मूल्य एक कल्प के समान होता है। क्या अनोखा सामंजस्य है ? आनंद और वेदना दोनों का केन्द्रीकरण एक साथ देखना है, तो प्रेम को देखें। वस्तुतः प्रेम में ही जीवन का हर पहलू है। दूसरे शब्दों में प्रेम और जीवन एक ही वस्तु के दो

नाम हैं। रसखान के अनुसार प्रेम अपरिमेय सागर ही तो है जो सभी रसों का आकर है। इसमें निमग्न होने पर वापिस निकलने का प्रश्न ही नहीं रहता है।

प्रेम अमिय अनुपम अमित - सागर सरिस बखान ।
जो आवत एहि ढिग बहुरि - जात नहीं रस खानि ।।

ऐसी एक निष्ठ, कामना शून्य, अव्यभिचारी, अनन्य गतिक भावदशा में अन्य के लिये तिलमात्र स्थान नहीं। रहीम जी के शब्दों में –

प्रीतम छबि नैनन बसी - पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि - पथिक आप फिरि जाय ।।

महात्मा कबीर के शब्दों में –

कबिरा काजर रेख हूँ - अब तो दई न जाय ।
नैननि प्रीतम रमि रहो - दूजो कहाँ समाय ।।

काजल तो फिर भी साकार था। उन अनन्यानुरागी आँखों में निराकार नींद तक के लिये स्थान नहीं रह जाता।

आठ पहर चौंसठ घरी - मेरे और न कोय ।
नैनों माँही तू बसै - नींदहिं ठौर न होय ।।

यह दिव्य प्रेम–पथ किसी सीमा, मर्यादा, देशकाल, रूपरंग जाति वर्ण आदि के बन्धन में नहीं बँधा। प्रेम कोई व्यवधान मानता ही नहीं। कर्म कांडादिक अन्य साधनों की भाँति–अधिकारी अनाधिकारी का प्रश्न नहीं उठाता। सभी संकीर्णताओं से परे वह सर्वकाल में सुलभ, सर्वदेशीय, सार्वजनिक एक रस अचल साधन है।

संत सभा की अनुपम आम्र वाटिका में श्रद्धा की सुहावनी बसंत ऋतु के समागम से विविध विधान युक्त भक्ति निरूपण एवं तत्संबंधी सद्गुण क्षमा, दया, दम आदि से रचित लता–मंडप में, शम, यम, नियम के मंगलमय पुष्प खिले, फलस्वरूप कल्याणकारी ज्ञान फल का प्रादुर्भाव हुआ। स्वाभाविक है कि इस दिव्य फल का रस अनुपम, मधुरतम एवं अलौकिक होगा। इस अमृतोपम रस की संज्ञा है "हरि पद रति"। स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि हरि पद रति सीधे शब्दों में भगवत्प्रेम ही ज्ञान–फल का रस क्यों निरूपित किया गया है ? इसे समग्र कर्मकाण्ड के पुष्प से उत्पन्न ज्ञान फल का रस क्यों माना गया है ?

सम यम नियम फूल फल ग्याना - हरिपद रति रस वेद बखाना ॥

1/37/14

इस रति शब्द पर विचार करते हुए यह देखना है कि इसका पर्यायवाची प्रेम कैसे बनता है?

समस्त जड़ चेतन जगत में प्रभु का दर्शन करने का भाव आ जाने पर मानव अन्तःकरण की सहज वृत्ति राग परिष्कृत होकर प्रेम बन जाती है। द्वेष का पूर्ण अभाव हो जाता है। उस दशा में उन तत्वों से उन तत्वों के नाते राग द्वेष न रहकर भगवद्धारणा करते हुए तत्सम्बन्ध के कर्त्तव्य पालन में जीव प्रवृत्त होता है। तब वह अपने लिये कार्य नहीं करता प्रभु का कार्यवाहक बन जाता है। फलस्वरूप जो रति जगत विषयक होने पर सबसे निम्न भाव की है, वही रति जब भगवद् विषयक हो जाती है, तो सबसे ऊपर की स्थिति को जाती है।

इस प्रेम-पथ पर अग्रसर होने वाला विश्व प्रेमी ही ईश्वर का अनन्य भक्त कहलाता है। स्वयं प्रभु राम ने अपने श्री मुख से योग्यतम अधिकारी पवन-पुत्र हनुमान को इस महामंत्र का उपदेश दिया है।

सो अनन्य जाके असि- मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥ 4/3

इस प्रेम में दूसरों के दुर्गुण नहीं सद्गुण दिखाई देते हैं। दोष-दर्शन जो सारे झगड़ों की जड़ है, स्वतः दूर हो जाता है। जब सभी उसके प्रेमास्पद ही हैं, तो क्या उनमें भी वह दोष देखेगा। वह तो चातक की भाँति बन जाता है।

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की तातें नाप न जोख ॥ दोहावली-281

प्रेमी को गुण दोष देखने का अवकाश ही कहाँ है। प्रेम तो तीनों गुणों के दायरे से परे गुणातीत होता है, जिसमें अंधकार है ही नहीं, केवल पूर्ण प्रकाश है। अज्ञान नहीं है, ज्ञान का ही साम्राज्य है। शोक का लवलेश नहीं, अखण्ड आनंद है। यह दृष्टि यदि आज विश्व में व्याप्त हो जावे तो सारे अनर्थों का विवाद शान्त हो जावे। पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, व्यक्तिवाद, आदि विविध वादों का एवं सभी प्रकार की संकीर्णताओं का एक मात्र समाधान यदि कहीं है तो यही उत्सर्ग भावना से ओतप्रोत प्रेम है। युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त विश्व को यदि कहीं शान्ति

की धारा प्रवाहित प्रतीत होती है, तो वह इसी दिव्य प्रेम तत्व में है। प्रेम ही मानव चेतना का विकास करके उसे विश्व चेतना में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम से ही व्यक्ति महामानव बन जाता है। इस प्रेम में मेरा–तेरा, गरीब–अमीर, ऊँच–नीच, जाति–पाँति, भाषावाद, प्रान्तीयवाद, संकीर्ण राष्ट्रवाद आदि का कोई व्यवधान ही नहीं रह जाता। इस प्रेम–पथ पर अग्रसर होने वाला विश्व प्रेमी ही ईश्वर का अनन्य भक्त कहलाता है –

सो अनन्य जाके असि - (पूर्वोक्त)

इस सबंध में महर्षि पतंजलि योग विद्यापीठ के संस्थापक आचार्य स्वामी रामदेव के विचार मननीय हैं।

"प्रेम जीवन का उपहार है जीवन की आवश्यकता है। प्रेम जब हृदय से स्फुटित होता है तो जीवन में सहज समर्पण होता है। प्रेम के प्रतिरूप हैं करूणा, ममता, वात्सल्य, सेवा, सद्भाव, धैर्य और माधुर्य। इसलिये माँ बच्चे से प्रेम करती है और अपनी ममता, वात्सल्य, करूणा व समर्पण से उसको सींचती है। गुरू–शिष्य, पिता–पुत्र, और दो मित्रों का प्रेम हमारी सामाजिक अध्यात्मिक व्यवस्था का हिस्सा है। दुर्भाग्य से प्रेम की जगह आज वासना ने ले ली है। प्रेम में जीवंतता है, वासना प्रेम की हत्या है। प्रेम का केन्द्र हृदय है, वासना का केन्द्र भोगेन्द्रियाँ हैं। प्रेम जीवन स्तर को उठाता है, वासना गिराती है। प्रेम होशपूर्ण अवस्था है वासना विवेक शून्यता है। प्रेम में प्रसाद है, वासना में अवसान है। प्रेम से ही जीवन का सन्तुलन है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी जीवन लक्ष्यों में भी संतुलन जरूरी है। संतुलन बिगड़ने पर धर्म के पागलपन से उन्माद, अर्थ के पागलपन से भ्रष्टाचार, काम के पागलपन से व्यभिचार एवं मोक्ष के प्रति पागलपन से पलायनवाद पैदा हो जायेगा।"

प्रेम द्वैत–अद्वैत दोनों से विलक्षण स्थिति है। वह द्वैत होते हुए भी अद्वैत एवं अद्वैत होते हुए भी द्वैत तो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता ही है। यह अलौकिक अनिर्वचनीय अवस्था है। यहाँ न भेद है न अभेद, दोनों से परे फलरूपा स्थिति है। ऐसे ही अन्तर्बाह्य ऐक्यमय प्रेम की रहीम सराहना करते हैं।

रहिमन प्रीति सराहिए मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै तजै सफेदी चून ॥
रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला- भीतर फाँकें तीन ॥

प्रेमी प्रेमास्पद की यह तदाकारता, तन्मयता अद्वैत से विलक्षण है। इसी भाव को देवर्षि नारद अपने भक्ति सूत्र में

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव श्रृणोति तदेव भाषयति ।

तदेव चिन्तयति ।। **सं. 55**

द्वारा प्रकट करते हैं, जिसकी व्याख्या हेतु प्रेम रस से ओत प्रोत दोहे दृष्टव्य हैं।

कहि न जाय मुख सौं कछू - स्याम प्रेम की बात ।

नभ, जल, थल, चर, अचर सब - स्यामहिं स्याम दिखात ।।

ब्रह्म नहीं माया नहीं, नहीं जीव यह काल ।

अपनी हूँ सुधि ना रही - रह्यो एक नंद लाल ।।

को कासों केहि विधि कहो - कहै हृदय की बात ।

हरि हेरत हिय हरि गयो - हरि सर्वत्र दिखात ।।

प्रेम में दो जीव निर्जीव की भाँति एक और एक दो नहीं बनते, प्रत्युत् सजीव होने के नाते एक और एक मिलकर ग्यारह बन जाते हैं। बल्कि यह कहें कि प्रेमानन्द सागर में निमग्न होने पर दो आत्मायें एक ही हो जाती हैं। प्रेमी का अस्तित्व प्रेम पात्र के अस्तित्व में समाहित हो जाना ही प्रेम है। इसे प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत भाव कहते हैं। प्रेम, प्रेमी, प्रेमास्पद देखने में तीन होने पर भी वास्तव में एक हो जाते हैं।

त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यमेक प्रभेदने ।

प्रेम प्रेमी प्रेम पात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम् ।।

शास्त्रों में "प्रेमैव परमेश्वरः" कहा गया है। प्रेम और ईश्वर की समरूपता के विचारक दोनों को अनिर्वचनीय मानते हैं। दोनों "नेति–नेति" शब्दों द्वारा अग्राह्य हैं। ईश्वर को अखिल विरूद्ध धर्माश्रयी" कहा गया है। एक ओर वह "अणोरणीयान्" है तो साथ ही "महतोमहीयान्" है। श्रुतियाँ उसे "तददूरेतदन्तिके" अत्यन्त दूर साथ ही अत्यन्त पास एवं तदेजति तन्नेजति (ईशावास्योपनिषद् नं. 5) कहती है।

ठीक ऐसे ही प्रेम भी अखिल विरूद्ध धर्माश्रयी है। उसकी गति विचित्र है भक्त भगवत्‌रसिक कहते हैं।

अरबरात मिलिबे कहँ निसिदिन
मिलेहिं रहत मानों कबहुँ मिले ना ।
"भगवत रसिक" रसिक की बातें
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ।।

इस प्रकार प्रेम में संयोग एवं वियोग अर्थात् सुख एवं दुख का परिपूर्ण रसास्वाद एक साथ होता है। अतएव प्रेम में ईश्वर की तरह ही समस्त विरोधाभास एक साथ दृश्यमान होते हैं।

निष्कर्ष रूप में प्रेम धाम वृन्दावन से प्रकाशित पत्रिका "प्रेम सन्देश" के मुख–पृष्ठ में उद्धृत किए जाने वाले प्रेम महिमा प्रतिपादक श्लोक के साथ इस अध्याय का समापन करते हुए प्रेम की प्रतिष्ठा विषयक महाकाव्य "प्रेम रामायण" के सन्दर्भ अग्रिम अध्याय में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

प्रेमैव परमो धर्मः प्रेमैव परमागतिः ।
प्रेमैव परमं धाम प्रेमैव परमेश्वरः ।।

अध्याय - दो

प्रेम में परमेश्वर की प्रतिष्ठा

उल्टीं पुल्टीं करीं, अखिल जग की सब भाषा ।

पै अबलौं नहिं बनीं, प्रेम पूरी परिभाषा ।।

सत्यनारायण "कविरत्न"

प्रेम तत्व सम्बन्धी जिज्ञासा के समाधान हेतु सर्वप्रथम देवर्षि नारद प्रणीत भक्ति–सूत्र का समाश्रयण समीचीन प्रतीत होता है। अस्तु कतिपय नारदीय भक्ति सूत्रों का अवलोकन करें।

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः {1} सा त्वस्मिन परमप्रेम रूपा {2}
अमृतस्वरूपा च {3} यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, अमृतोभवति,
तृप्तो भवति {4} यत् प्राप्य न किञ्चित् वाञछति, न शोचति,
न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति {5} यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति,
स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति {6} ॐ अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् ।।

अर्थात् भक्ति परम प्रेम स्वरूप है। अमृत स्वरूप है। जिसे पाकर भक्त पूर्णकाम या परिपूर्ण हो जाता है, अमर हो जाता है, चिर तृप्त हो जाता है। सिद्धि उसके लिए पूर्ण ईश्वर तन्मयता या पूर्ण ईश्वर शरणागति है। अमरता उसके लिए मृत्यु के भय से पूर्ण मुक्ति है। वह शुद्ध आत्मा हो जाता है। प्रेम कभी परिणाम नहीं है। वह चिरन्तन होता है। तृप्त अर्थात् वह सभी कामनाओं से मुक्त हो जाता है। जिसे प्राप्त करके भक्त अन्य कुछ पाने की इच्छा नहीं रखता। चिन्ता नहीं करता। किसी से द्वेष नहीं करता। किसी अन्य वस्तु से सुख की चाह नहीं रखता। और कुछ अन्य करने हेतु उत्साहित नहीं होता। जिसे जानकर भक्त मतवाला हो जाता है। जड़ पदार्थ के समान सभी क्रियाओं को छोड़ देता है और अपनी आत्मा में ही आनंद पाने लगता है। यद्यपि प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। फिर भी देवर्षि नारद प्रेम विषयक अपनी परिभाषा इस सूत्र में प्रकट करते हैं।

नारदस्तुतदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेतिच । 19

अर्थात् देवर्षि नारद का मानना है कि अपने सभी आचरणों का ईश्वर के प्रति समर्पण और उनकी विस्मृति होने पर परम व्याकुलता ही भक्ति है। अस्तु जिस प्रेमाभक्ति में जीव को अपने

देह की सुधि–बुधि नहीं रहती, वह नित्य निरन्तर परमहंस दशा में निमग्न रहता है। मन की संकल्प–विकल्प की गतियाँ रूक जाती हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहं का पूर्ण विस्मरण हो जाता है। किं बहुना स्वरूपाकार वृत्ति एवं परमानंद में निमग्नता प्राप्त हो जाती है उस प्रेमा भक्ति के सूक्ष्म स्वरूप को वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता। वह कहने, सुनने, समझने से परे है।

इस दुःखालयं अशाश्वतं संसार में प्रेम ही एकमात्र अजर, अमर, अपरिवर्तनशील तत्व है, जो समस्त जीवों में आत्म रूप से परिनिष्ठित अविनाशी चैतन्य सत्ता है। दूसरे शब्दों में प्रेम आत्मा का वह प्रकाश है, जिसके अवलम्बन से प्राणी इस संघर्षमय संसार में दुःख को सुख में, विष को अमृत में, मृत्यु को जीवन में, दुष्ट को सज्जन में, दानव को देव में, एवं नर्क को स्वर्ग में परिवर्तित करने में समर्थ हो जाता है। अस्तु प्रेम ही जीवन की सर्वोच्च प्रेरणा है।

प्रेमावतार, पंचरसाचार्य, देवर्षि शिखर संत सम्मान से विभूषित संत प्रवर श्री रामहर्षण दासजी के गीति काव्य "प्रेम–वल्लरी" में प्रभु के तत्सम स्वरूप प्रेम का विस्तृत चित्रण पदे–पदे अवलोकनीय है। कतिपय पदों को उद्धृत करना समीचीन होगा ताकि इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य देव प्रेममूर्ति भरत की झलक पाने में लेखक–पाठक दोनों पात्रता प्राप्त कर सकें। प्रेमवल्लरी के पद संख्या 88 में आचार्य चरण ने प्रभु और उनके प्रेमरस को उसी तरह अभेद निरूपित किया है, जैसे वर्फ और जल को विचारपूर्वक देखा जावे, तो दोनों एक ही सिद्ध होते हैं। प्रभु और उनका प्रेम दोनों ही सर्वसमर्थ सुखदाता हैं। प्रेम रस के बिना ज्ञान, वैराग्य, धर्म, कर्म सब तुच्छ हैं।

प्रेम प्रभुहिं को रूप सुनो भाई ।
प्रभु को जानहु प्रेम स्वरूपा, प्रेमहिं प्रभू अनूप ।।
प्रेम प्रभू है तत्व न कहियत, तनिक न देखत भेद ।
प्रेम पथिक मर्मज्ञ बतावत, संत शास्त्र वद वेद ।
यथा वर्फ अरू जल जग देखियत, एकहिं किये विचार ।
तथा प्रभू प्रगटत उर भीतर, प्रेम रूप रसवार ।।
सब समर्थ दूनहुँ सुखदायक, तिन बिन सर्वस छूँछ ।
हर्षण विरति विवेक जरै सब, धर्म कर्म सब तूछ ।।

(प्रेम वल्लरी पद सं. 88)

अध्यात्म के सभी साधन प्रेम प्राप्त कराने में एकदम असहाय सिद्ध हो जाते हैं। कर्मयोग, अष्टांग योग, ज्ञान, वैराग्य, उपासना आदि की साधना करोड़ों कल्पों तक करते रहने पर भी प्रभु प्रेम का लवलेश भी सुलभ नहीं होता। किन्तु रामकृपा का लवलेश या रसिक प्रेमीजनों का संग मिल जावे, तो हृदय प्रदेश में प्रेम का प्रकाश छा जाता है। तब रोम–रोम में रस की धारा उमड़ पड़ती है। प्रेम के स्पर्श से वज्र भी पिघलकर मोम बन जाता है। चारों ओर आनंद ही आनंद छा जाता है। वेद वर्णित "रसो वै सः" का चतुर्दिक प्रसार होता है। अहं मम का पूर्ण विसर्जन हो जाता है। ऐसी स्थिति वाणी का विषय नहीं। अनिर्वचनीय है।

प्रेम मिलै नहिं कौनेउ साधन, यत्न करै कोउ कोटि हजार ।
कर्मयोग अष्टांग सुयोगा, विरति विवेक उपासन लोगा,
करत करोड़न कल्प बितावै, लहै न प्रीतम प्यार ।।
रसिकन कृपा बिलोकनि भाई, राम कृपा लवलेशहिं पाई,
प्रेम प्रकाशत प्रेमी उर में, रोम रोम रस धार ।।
प्रियतम प्रेम परस जब पावै, वज्रहु पिघल मोम बनि जावै,
नेह नीर अम्बुधि उमड़ावत, बोरत दोउ करार ।।
आनँद आनँद आनँद एका, रहत रसहिं रस अन्यन नेका,
स्थिति करनी पार जहाँ की, "हर्षण" हम न हमार ।।

(प्रेम वल्लरी पद सं. 87)

प्रेम का आसव पीने पर परमानंद रस सिंधु में ऐसी निमग्नता प्राप्त होती है कि "जित देखौं तित श्याममई" दृष्टि बन जाती है। प्रेमी का स्पर्श करने में वासना रूपी चमारिन तथा चिंता रूपी साँपिनि असमर्थ रहती हैं। शोक, मोह, भ्रम, संशय सब समाप्त हो जाते हैं। एक अजीब मस्ती छा जाती है। वेद अपनी विधि–निषेध की मर्यादा प्रेमी पर से उठा लेते हैं। लोक व्यवहार पीछे छूट जाता है। अहं मम का विसर्जन हो जाने से स्वप्न में भी भवरस की छाया नहीं पड़ती। प्रेमी को प्रेम का आसव पिलाने वाला प्रेमास्पद हृदय में पूर्णतः छा जाता है।

आनँद आनँद आनँद आया रे, मै तो प्रेम का आसव पाया रे ।
जित देखौं तित श्याम दिखावत, नयनन नेह समाया रे ।।
चाह चमारिन, चिन्ता साँपिनि, छुअति न हमरी काया रे ।
शोक, मोह, भ्रम, संशय नसि गे, पागलपन तन छाया रे ।।

बिधि, निषेध, श्रुतियन मर्यादा, लोक रीति जो गाया रे ।
मोहिं ते शासन लियो उठाई, बाबल जानि अमाया रे ।।
मैं अरू मोर भूलिगे सिगरे, भवरस स्वप्न न भाया रे ।
"हर्षण" हृदय बस्यो सोई आई, जेहिं ने पेय पिलाया रे ।।

(प्रेम वल्लरी पद सं. 16)

प्रेम महिमा के प्रकाशनार्थ प्रेम वल्लरी गीति काव्य के मात्र तीन पदों का उल्लेख करके उसी संदर्भ में अब प्रेमावतार आचार्य महाप्रभु श्री रामहर्षण दासजी के श्री प्रेम रामायण महाकाव्य की कतिपय पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ भी मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। यों तो समग्र प्रेम रामायण प्रेम रस से सराबोर महाकाव्य है, क्योंकि यह प्रेम नगरी मिथिला के युवराजकुमार प्रेममूर्ति श्री लक्ष्मी निधि की प्रेम गाथा है। उसमें भी ज्ञानकाण्डान्तर्गत प्रेमरस का निरूपण अपने आप में बेजोड़ है। इस काण्ड में प्रेमास्पद भगवान राम अपने प्रिय श्याल मैथिल युवराज कुमार श्री लक्ष्मी निधि को अपने प्रेमी की रहनि दशा एवं प्रेमी की महिमा का दिग्दर्शन कराते हैं। ग्रंथ के विस्तार–भय से अविकल उद्धरण न देकर यत्र–तत्र की कतिपय चौपाइयों को उद्धरण मात्र से संतोष करना पड़ रहा है। अर्थ स्पष्ट समझ में आने के कारण उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत नहीं की जा रही है।

तृण सों नीचे बनि रहहिं, तरू सों अधिक सहिष्णु ।
सबहिं मानप्रद भावयुत, सेवहिं जग गुनि विष्णु ।। 59
प्रेम योग रत शम दम धारे । षट् रिपु भगे मानि मन हारे ।।
हर्ष विषाद पार चित भयऊ । शोक मोह भागे भ्रम गयऊ ।।
हृदय ग्रंथि खुलि गई महानी । संशय कटे सकल दुख खानी ।।
कर्म बीज नसि भये खुआरा । निर्भय रहत सदा मम प्यारा ।।
कर्म शुभाशुभ मन सों त्यागी । मम पद प्रीति पगेउ बड़ भागी ।।
जग सों नहिं पावत उदवेगा । पर उदवेग करन नहिं रेंगा ।।

दोहा– मन क्रम बचन पवित्र बनि, रहै सदा निरपेक्ष ।
उदासीन जग सों रहै, मोहिं सों नित सापेक्ष ।। 60
पर दुख दुखी हृदय अति कोमल । पर सुख निज सुख गिनत मनोबल ।।

गुणातीत समता शुचि भारी । छोड़ि पुजापहिं बनेउ पुजारी ।। 62/6–8
प्रेम पुलकि नयनन जल धारी । श्रवत कपोलनि मम अति प्यारी ।।
तन रोमांच कंठ अवरोधा । मानहुँ नेह रूप रस सोधा ।।
प्रेम विभोर जबहिं सो होई । नृत्यन लागत मन मुद मोई ।।
त्याग लाजि गावत सुर ऊँचे । रोवत प्रलपत मम रस कूँचे ।।

दोहा– प्रेम सरोवर पैठि कै, निकसत नाहिं दिखाय ।
अनुपम भावहिं जान को, मैं इक लखऊँ सुभाय ।। 63

तन मन धन रामहिं कर मानी । रामहिं केर जगत जिय जानी ।।
सुनि सुनि प्रेममयी मम बानी । भूलि जात अपनो सब भानी ।।
मम सुख सुखी सहज सुख रासी । मम इच्छा निज चाह प्रकासी ।।
प्रेमिन्ह कह निज नयनन देखी । लिपटि लहत करि प्रीति बिशेखी ।।

दोहा– बूड़त आनँद सिंधु महँ, मम मिलनहिं जियजानि ।
करि सतसंगति सुख सनै, सब साधन फल मानि ।। 65

मम जन जो परबत महँ रहई । पत्थर मित्र बनन तेहिं चहई ।।
बान्धव बंधु बनहिं तस जेते । स्वजन सुखद मृग सावक चेते ।।
बिपति बनै सम्पति तेहि केरी । उत्सव बनत दुसह दुख ढेरी ।।

दोहा– प्रेमी हित असमाधि हूँ, अहै समाधि महान ।
बड़ दुखहूँ सुख सम्पदा, होत हिये महँ भान ।। 66

ताके कर्म अकर्महिं मानो । भुने बीज सम कुंअर सुजानो ।।
जागृत मध्य सुषुप्ति समाना । रहत सुप्रेमी भान भुलाना ।।
जीवत सो पै मृतक स्वरूपा । रहै आत्म रत भाव अनूपा ।।
प्रेमी करैं सकल आचारा । वेद शास्त्र जस कहि निरधारा ।।
कर्त्तापन निज त्यागे रहई । करतेहुँ काज अकरता अहई ।।67–2–7
शास्त्र विरोध न कर आचारा । किंचित मात्र कुँअर मम प्यारा ।।
अन्तर्मुखी वृत्ति गहि लीनी । प्रेम विभोर बुद्धि रस भीनी ।।
मम बिनु जन जिमि जल बिनु मीना । तलफन लगत प्रेम परबीना ।।
परमानंद मगन दिन राती । सोवत शांति संग रस माती ।।

दोहा– परमातम रस नित चखैं, झूलत प्रेम हिंडोर ।
उर लपटाये मोंहि रहत, हर्षण हृदय विभोर ।। 71

रोम रोम तें प्रेम सुजोती । निकसत रहत निरंतर सोती ।।
महाभाव रस छका हमारे । भक्तभाव मूरति तन धारे ।।
भीतर जस जस लहत अनंदा । निरखि निरखि मोहिं निमिकुल चंदा ।।
सो सुख केवल जानत सोई । मो कहॅं दुर्लभ वा रस जोई ।।

दोहा– यह सब बरणी रसिक की, सुखद चिन्हारी भूप ।
तासु तनहिं जस चिन्ह रह, सो सब सुनहु स्वरूप ।। 72

तन सौन्दर्य तेजमय भासा । मधुमय जग महँ करै प्रकासा ।।
सकल शरीर सुगंधित होई । जानि परै जग कहँ मुद मोई ।।
रमणी पुंसा मोहन होई । सब कर चित आकर्षत सोई ।। 73–6–8
प्रेमिन पीछे हौं नित डोलौं । तिन पद रज लहि पावन बोलौं ।।
प्रेमिन पदहिं परसि सुरसरिता । होत पुनीत महामुद करिता ।।

दोहा– जहँ जहँ प्रेमी पग धरैं, तहँ तहँ तीरथ होय ।
सकल पाप मोचन करैं, मोह नसै थल जोय ।। 75

जो बोलैं सो श्शास्त्र कहावै । तेहिं पथ चलत जीव सुख पावै ।।
जो कछु कहहिं हमारे दासा । सो सत कर्म मोक्ष पर कासा ।।
प्रेमी संत सेव जो सरहीं । सो मोहिं सब बिधि वश महँ करहीं ।।
प्रेमी सत सत मोर स्वरूपा । तनिक भेद नहिं निमिकुल भूपा ।।

दोहा– बिपुल बड़ाई भक्त कहँ, देउँ जगत के बीच ।
ब्रह्मादिक पूजन करैं, सुर नर मुनि रस सींच ।। 76

अतुलित महिमा भक्त की, को जग जानन हार ।
वशी रहत तिन के सदा, हौंहू जातो हार ।। 78
प्राणाधिक मोहिं भक्त पियारे। तिनके हेतु आत्म कहँ हारे ।।
भक्तन हृदय करौं मैं बासा। हमरे हृदय सो हरषण दासा ।।

दोहा– प्रेमी कर बीज उर में, पया आपहि छोय।

मोर रूप बनि भक्तबर, आपुहिं देवैं गोय ।। 79

प्रेमरामायणान्तर्गत प्रेमी की रहनि तथा महिमा सम्बन्धी प्रकरण का संक्षिप्त रूप में उक्त उद्धरण इसलिए प्रासंगिक बन गया है, क्योंकि इस ग्रंथ के चरित्र नायक भरत प्रभुप्रेमी के उक्त स्वरूप के मूर्तिमान श्री विग्रह हैं। उनकी रहनि में पग–पग पर इन्हीं गुणों की झाँकी का दर्शन प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

भगवत्प्रेमी की रहनि सम्बन्धी उक्त लक्षणों का चित्रण हमें महर्षि बादरायण वेद व्यास प्रणीत श्रीमद् भागवत महापुराण में स्थल–स्थल पर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ एक श्लोक दृष्टव्य है–

क्वचिद् रूदति, वैकुण्ठ-चिन्ता-शबल चेतनः,
क्वचिद्धसति, तच्चिन्ताह्लाद, उद्गायति क्वचित् ।।
नदति, क्वचिदुत्कण्ठो, विलज्जो, नृत्यति क्वचित्
क्वचित्तद्भावना युक्तस्तन्मयोऽनुचकारह ।।

(श्रीमद् भागवत 7/4/39–40)

अर्थात् भगवत्प्रेम में पागल भक्त का हृदय कभी तो क्षुब्ध सा हो उठता है और कभी वियोगजन्य दुःख के स्मरण से रोने लगता है। कभी अपने आराध्य के चिन्तन से प्रसन्न होकर उनकी रूपसुधा का पान करते हुए हँसने लगता है। कभी निर्लज्ज होकर नृत्य करने लगता है, और कभी कभी ईश्वर चिन्तन में तन्मय होकर अपने आप ही भगवान् की लीलाओं का अभिनय करने लगता है।

इस प्रकार प्रेमी का आचरण प्रायः लोक–वाह्य होता है । उन्हें लोक की चिन्ता नहीं होती। वे बालकों की भाँति आनंद में मस्त रहते हैं। उन्हें रोने में भी मजा आता है और हँसने भी आनंद आता है। वे अपने परम प्रेमास्पद की याद में सदा बेसुध रहते हैं। कोई उन्हें उनके प्रियतम की कैसी भी चर्चा सुना दे। बस उनके अंग–अंग में सात्विक भावों का दिव्य विलास अठखेलियाँ करता दीखने लग जावेगा।

ऐसी प्रेम दशा की मस्ती महात्मा सुंदरदास से सुनिये ।

प्रेम लग्यो परमेश्वर सों, तब भूलि गयो सिगरो घर बारा ।

ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित, नेक रही न शरीर सँभारा ।।

श्वाँस उसाँस उठै सब रोम, चलै दृग नीर अखंडित धारा ।

"सुंदर" कौन कहै नवधा विधि, छाकि रह्यो रस पी मतवारा ।।

न लाज तीन लोक की, न वेद को कह्यो करै ।।

न शंक भूत प्रेत की, न देव यक्ष तें डरै ।।

सुनै न काहु और की, बसी न और इच्छना ।

कहै न भूल और बात, भक्ति, प्रेम-लच्छना ।।

श्री मत्पद वाक्य प्रमाण पारावारीण परिव्राजकाचार्य परमहंस श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने "भक्ति–रसायन" में

"नव रस मिलिंत वा केवलं वा पुमर्थं परममिह मुकुन्दे भक्ति योगं वदन्ति" आदि अद्‌भुत सरस वाक्यों में भक्ति रस की अलौकिकता का निरूपण करके समस्त दार्शनिक वादों के विवाद को निर्विवाद सिद्ध कर दिया है। उन्होंने स्वयं ही प्रश्न उठाते हुए कि भक्ति श्रंगारादि नव रसों में कौन सा रस एवं धर्मादि चार पुरूषार्थों में कौन सा पुरूषार्थ है, तर्कपूर्ण उत्तर द्वारा प्रतिपादित किया है कि श्रंगारादि नवरसों का समुच्चय भक्ति रस के रूप में पर्यवसित होता है एवं धर्मादि चारों पुरूषार्थों का समन्वित पर्यवसान भक्तियोग पंचम परम पुरूषार्थ में होता है।

इस विचार भाव की परिपुष्टि नाट्‌यशास्त्र प्रणेता श्री भरत मुनि ने इन शब्दों में दर्शाई है।

यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्जवलम् ।

दर्शनीयं वा तत्सर्व श्रंगारेणोपमीयते ।।

वस्तुतः यहाँ प्रेमतत्व ही रस की भाषा में श्रृंगार शब्द से वर्णित किया गया है। ध्यान तन्मयता में प्रेमपात्र के ध्यान में तल्लीन हो स्वयं अपने आपको प्रेम पात्र देखने लगने में जो उत्कृष्ट प्रेमदशा जागृत होती है, उसी को आचार्य श्रृंगार कहते हैं। इसका स्थायी भाव रति है। साहित्य में प्रेम का अनुभव करने के लिये रति का निदर्शन आवश्यक है। रति प्रीति का पर्यायवाची शब्द ही है। प्रमाणार्थ मानस में –

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहऊँ निरबान ।

जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ।। 2/204

इस साहित्यिक महाभाव को दार्शनिक भाषा में इस प्रकार अभिव्यक्ति मिलती है। सच्चिदानंद

प्रभु के तीन गुणों सत्, चित् और आनंद की तीन शक्तियॉ संवित् संधिनी एवं ह्लादिनी क्रमशः पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम अथवा मधुर, मधुरतर एवं मधुरतम अभिव्यक्ति हैं। अतएव ह्लादिनी पूर्णतम रस है। जिसे भगवती श्रुति "रसो वैसः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति" प्रतिपादित करती है। यदि इस आनंद को दूध मानें, तो ह्लादिनी शक्ति को उसका तत्व मक्खन कह सकते हैं। वह ह्लादिनी शक्ति महाभाव स्वरूपा है। इसकी एक विशेष वृत्ति भाव या भक्ति स्वरूप में प्रकट होती है। इस वृत्ति की परिपक्वावस्था का नाम ही प्रेम है, जो अनादि, अनंत, कालातीत है, इसी स्थिति को महात्मा कबीरदास पूर्ण ज्ञान का केन्द्र मानते हैं। अतः वे बोल उठते हैं।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।। 1
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानि मसान ।
जैसे खाल लुहार की, स्वॉस लेत बिनु प्रान ।। 2
सद्गुरू हम सों रीझि करि, एकै कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ।। 3
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय ।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ।। 4

इस प्रेम दशा की प्राप्ति के लिये वे पूर्ण बलिदान, पूर्ण समर्पण एवं अहंभाव का सम्पूर्ण तिरोधान आवश्यक मानते हैं।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जो चहै, सीस देय लैं जाय ।। 5
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे या माहिं ।। 6

इसी तारतम्य में कतिपय भक्त कवियों के प्रेम–परक उद्गार दृष्टव्य है । श्री कृष्ण भक्ति में लवलीन रसखानि के अनुसार प्रेमरसलीन भक्त –

"त्यों रसखानि वही रसखानि, जो है रसखानि सों है रसखानी"

भक्त प्रवर रसखानि रचित "प्रेम–वाटिका" के कतिपय दोहे–

इक अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान ।
गनै पियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ।। 1

अति सूच्छम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर ।

प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इक रस भरपूर ॥ 2

रसमय स्वाभाविक बिना, स्वारथ अचल महान ।

सदा एक रस बढ़त नित, शुद्ध प्रेम रसखानि ॥ 3

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तलवार ।

नेजा, भाला, तीर कोउ, कोऊ अनोखी हार ॥ 4

पै मिठास या मार की, अंग अंग भरपूर ।

मरत जिये झुकती घिरे, बचे सो चकनाचूर ॥ 5

हरि के सब आधीन हैं, हरि प्रेमी आधीन ।

याही तें हरि आपु हीं, याहि बड़प्पन दीन ॥ 6

प्रेम दीवानी भक्तिमती मीराजी प्रेम के नशे में मदमस्त बिचर रही हैं ।

और सखी मद पी पी माती, मैं बिनु पिया ही माती ।

प्रेम भटी को मैं मद पीयों, छकी फिरूँ दिन राती ॥

उनके हृदय का दर्द कौन जान सकता है? विश्व का कोई वैद्य न इस रोग को समझ सकता है, न उसके पास इस अलौकिक विषम दर्द की दवा है। इस दर्द को तो वही दूर कर सकता है, जिसने अपने प्रेम में पागल करके यह दर्द पैदा किया है।

जाहु वैद घर आपने तेरा किया न होय ।

जिन यह वेदन निर्मई, भला करैगो सोय ॥

कविवर रहीम ने अपने नीतिपरक दोहों के साथ प्रेम रस पूर्ण दोहों की भी भावाभिव्यक्ति प्रकट की है। आइये, उनके उद्‌गारों की भी एक झलक प्राप्त कर लें।

जेहि रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन ।

तासों सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ 1

जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं ।

रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि के सुलगाहिं ॥ 2

कविवर बोधा की दृष्टि में प्रेम पंथ तलवार की धार पर दौड़ने के समान अत्यंत कठिन है।

अति क्षीण मृणाल के तारहु तें, तेहिं ऊपर पाँव दै आवनो है।

सुई बेध को द्वार सकै न तहाँ, परतीति को टाँडो लदावनो है ।।

"कवि" बोधा अनी धनी नेजहुँ की, चढ़ि तापै न चित्त डिगावनो है ।

यह प्रेम को पंथ करारो सखी, तलवार की धार पै धावनो है ।।

इस प्रेम पंथ के पथिक की कोई स्वेच्छा नहीं। प्रेमास्पद की रूचि पर आत्म बलिदान करने वाला ही इस ओर आने का साहस करें।

यह प्रेम का पंथ भयानक है, निज हाथ पै सीस लिये रहना ।

तजना मधुशाला कदापि नहीं, नित प्रेम का प्याला पिये रहना ।।

दुख औ सुख में बने मौन रहो, उनकी रूचि जानि सहे रहना ।

कह दें मरना तो मरें रहना, कह दें किजियो तो जिये रहना ।।

"है प्रेम जगत में सार और कुछ सार नहीं" के गायक गोस्वामी बिन्दुजी का कथन भी श्रवणीय है।

नहिं अंतर में, नहिं बाहर में, नहिं आम में है, नहिं खास में है ।

नहिं योग में है, नहिं भोग में है, न विरक्ति में है, न विलास में है ।।

नहिं वेद विधान में, ज्ञान में है, नहिं संयम "बिन्दु" उपास में है ।

न पताल में है, न अकास में है, यदि प्रेम है तो प्रभु पास में है ।।

श्री रामचरितमानस में वर्णित राक्षसराज रावण के अत्याचार से त्रस्त देवगण जब भक्तभय हारी भगवान की खोज में बैकुण्ठ या क्षीरसागर तक दौड़ लगाने को विवश हो रहे थे, तब त्रिभुवन गुरू सदाशिव शंकर जी ने उन्हें यही ज्ञान देकर मार्ग सुझाया था कि परम प्रभु की खोज में अन्यत्र जाने की आवश्यकता ही नहीं है। प्रेम विह्वल स्वर में यहीं पुकार लगाइये। वे प्रेम परवश प्रभु यहीं पर तत्काल प्रकट होकर तुम्हें निर्भय कर देंगे।

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ।।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।।

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।

अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रकटइ जिमि आगी ।।

1/185/4–7

अस्तु सर्वव्यापक सर्वदेशीय, सर्व नियामक, सर्वसाक्षी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मायातीत, निरंजन, अजन्मा, अनादि, अनंत निर्गुण, निराकार, परब्रह्म भक्त–प्रेम परवश होकर अपने सभी

विशेषणों को भुलाकर साकार रूप धारण कर एकदेशीय बनकर भक्त की गोद में विहार करता है।

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण बिगत बिनोद ।

सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ।। 1/198

अतः भगवान शंकर ने माता पार्वती को शंका के समाधानार्थ बतलाया था कि

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।।

1/116/2,3

वह "प्रेम बिबस सेवक सुखदाता" परम प्रभु अपने भक्त को ही गुरू रूप में अंगीकृत करके उनके चरणों की सेवा में मोद का अनुभव करता है।

तेई दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरू पद कमल पलोटत प्रीते ।। 1/226/5

परम ब्रह्म ज्ञानी गुरूदेव वशिष्ठ जी के शब्दों में–

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ।। 2/4/8

प्रेम में इस प्रकार परमेश्वर की प्रतिष्ठा का अवलोकन करके अगले अध्याय में परमेश्वर से भी विशिष्ट प्रेम की झाँकी का दर्शन करने हेतु राम प्रेम की भिक्षा माँगकर अध्याय का समापन।

राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन ।

रघुबर कबहुंक करहुगे, तुलसिहिं ज्यों जल मीन ।। दोहावली/57

अध्याय - तीन

प्रेम परमेश्वर से भी विशिष्ट

आरत पाल कृपाल जो रामु, जेहीं सुमिरे तेहि कोतहँ ठाढ़े ।
नाम-प्रताप महा महिमा, अंकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े ।।
सेवक एक तें एक अनेक, भए तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े ।
प्रेम बदौं प्रहलादहिं को, जिन पाहन तें परमेश्वरू काढ़े ।।

कवितावली पद संख्या 127

यह है दिव्य भगवत्प्रेम की अलौकिक महिमा, जिसने वाह्यरूप से निर्जीव पाषाण से महामहिमाशाली परमेश्वर को प्रकट होने हेतु बाध्य कर दिया। अस्तु यह दिव्य प्रेमतत्व भगवान का प्रतिरूप अर्थात् उनके समकक्ष तो है ही, प्रत्युत कभी कभी उनसे विशिष्ट भी परिलक्षित होता है। भगवान भले मिल जावें, पर उनके प्रति प्रेम हृदय में न हो, तो वे भयंकर दिखलाई पड़ते हैं। जनकपुर की धनुष यज्ञ शाला में कुटिल राजाओं को भयानक मूर्ति तथा असुरों को साक्षात् काल के रूप में घातक दिखलाई पड़ते हैं।

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल समदेखा ।।

1/241/6-7

जबकि अविरल प्रेम भक्ति में तल्लीन परमप्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण की प्रेम डोर में बँधे श्रीराम उनकी प्रेम विह्वल लीला को देखने हेतु सहज ही खिंचे चले आते हैं तथा उनके हृदय में बिराज जाते हैं।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरू ओट लुकाई ।।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा ।।

3/10/13, 14

तदुपरान्त प्रेमीभक्त सुतीक्ष्ण से मिलने हेतु भगवान राम छटपटाने लगे। अनेक प्रयास करने पर भी जब ध्यानविभोर भक्त प्रकृतिस्थ नहीं हुआ तो भगवान ने सुतीक्ष्ण के हृदय में विराजमान अन्तर्यामी द्विभुज राम को बदल दिया। चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया। इस रूप

परिवर्तन से व्याकुल होकर अनन्य भक्त सुतीक्ष्ण भगवान से मिलने को छटपटाने लगे। निदान जब भक्त और भगवान दोनों एक दूसरे से मिलने को व्याकुल हो गये तो उनका मिलना संभव हो सका। उनके मिलन की शोभा के दृष्टा कवि–कुल–चक्र–चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास ने टिप्पणी की–

मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला । कनक तरूहिं जनु भेंट तमाला

113/10-24

साधारण दृष्टि से देखने पर कैसी उल्टी उपमा प्रतीत होती है। मुनि से मिलकर भगवान राम कैसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे तमाल का वृक्ष सोने के वृक्ष से मिलकर सुशोभित होता है। विचारणीय है कि सोने का वृक्ष तो सुन्दर और बहुमूल्य होता है। उसकी तुलना में तमाल का वृक्ष महत्वहीन है। इस उपमा द्वारा राम की शोभा की वृद्धि प्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण के आलिंगन से हो रही है। महाकवि ने इस उत्प्रेक्षा द्वारा ठीक ही चित्रण किया है। वस्तुतः ईश्वर की शोभा प्रेम के मिलन से ही बढ़ा करती है। प्रेम के बिना ईश्वर एकदम अपूर्ण होता है। अस्तु मूर्तिमान प्रेम रूपी भक्त सुतीक्ष्ण को पाकर भगवान राम का विशेष शोभायमान होना उचित ही है। आश्चर्य का विषय नहीं है।

भगवान को वशवर्ती बनाने वाले प्रेम तत्व के सर्वोपरि प्रभाव को भक्तराज अम्बरीष की लीला में देवराज इन्द्र ने प्रत्यक्ष देखा था। फिर भी चित्रकूट की ओर प्रयाण करते समय प्रेम सिन्धु भरत के अपूर्व अनुराग को देखकर स्वार्थरत देवेन्द्र का मन उद्विग्न हो उठा। वे अन्य स्वार्थी देवगणों से अपना मंतव्य प्रकट करने लगे कि श्रीराम तो प्रेमपरवश हैं। प्रेमी की इच्छा के आधीन हैं। अतएव स्वाभाविक है कि प्रेम विह्वल भरत के मन में जो इच्छा होगी, तदनुसार चलने के लिए भक्त–वांछा–कल्पतरू राम विवश हो जावेंगे। अतः राम भरत की भेंट में अवरोध उत्पन्न करने का प्रयास किया जावे।

राम सँकोची प्रेम बस, भरत सप्रेम पयोधि ।
बनी बात बेगरन चहति, करिय जतनु छलु सोधि ।। 2/217

यह है प्रेम का अप्रतिम प्रभाव, जिसने देवराज इन्द्र जैसी लोकोत्तर हस्ती के मन में भी भय उत्पन्न कर दिया। वस्तुतः प्रेम तो परमानंद प्रदाता है। किन्तु जो व्यक्ति स्वार्थ–पारायण होता है, वह अपनी क्षुद्र मनोवृत्ति के कारण ही प्रेमतत्व से भयभीत होता है । इसका निराकरण करते समय देवगुरू बृहस्पति ने समझ लिया कि देवराज सहस्त्र नयनधारी होते हुए भी वस्तुतः

मोहान्ध हैं। उन्होंने देवेन्द्र को समझाया कि राम अपने प्रति किये अपराध से तो रूष्ट नहीं होते। किन्तु यदि उनके प्रेमी सेवक के साथ छेड़खानी करोगे, तो राम की क्रोधाग्नि में जल मरोगे। तुम्हें राजर्षि अम्बरीष के साथ अकारण द्रोह करने वाले दुर्वासा मुनि की दुर्गति याद होगी। अतः कुटिलता छोड़कर परम अनुरागी भरत के श्री चरणों के प्रति प्रेम करो। भरत तो परम रामभक्त हैं। वे निरन्तर पर हित में अनुरक्त रहते हैं। वे सब प्राणियों में अपने इष्ट राम का दर्शन करते हैं। इस कारण किसी प्राणी को दुखी देखकर स्वयं दुखी हो जाते हैं। वे भक्त शिरोमणि हैं। तुम अपने स्वार्थ के कारण व्याकुल हो रहे हो। इसमें प्रेममूर्ति भरत का लेशमात्र दोष नहीं है। तुम स्वयं मोहान्ध हो रहे हो। अतः सचेत होकर प्रेमावतार भरत की सेवा में तत्पर होकर अपना परम कल्याण कर लो।

राम भगत पर हित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत तें, जनि डरपहुं सुरपाल ।। 2/219

देवगुरू बृहस्पति द्वारा देवराज इन्द्र को इस प्रबोधन से यह सुस्पष्ट है कि भगवान को जो व्यक्ति उनके प्रेमी भक्त से सम्मिलन में बाधक बनता है, वह भगवान का कोपभाजन बन जाता है। प्रेमी भक्त ही तो भगवान का परम धन है। आइये इस तथ्य पर कुछ विस्तार से विचार कर लें कि यावत् जीवों के परम धन प्रभु की नव निधि क्या है ?

वस्तुतः श्रीराम ही सबके परम धन हैं। विनय पत्रिका में भगवान को क्षण प्रतिक्षण उसी भाँति संभालकर सुरक्षित रखने का उपदेश गोस्वामिपाद ने अपने मन को दिया है, जैसे कोई अत्यंत दरिद्री व्यक्ति अपने धन को सँभाल–सँभालकर सुरक्षित रखता है कि कोई छीन न ले जावे।

मन माधवजू को नेकु निहारिहि ।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों, छिन छिन प्रभुहिं सँभारिहि ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 85

मानस में भी श्री राम समस्त मुनिवृन्द के सर्वस्व परमधन तथा भगवान शिव के भी प्राणस्वरूप कहे गये हैं ।

मुनि जन धन सर बस सिव प्राना । 1/198/2

विश्वामित्र जैसे महामुनि राम को प्राप्त कर ऐसा अनुभव करते हैं, जैसे उन्हें महानिधि मिल गई हो।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिस्वामित्र महानिधि पाई ।। 1/209/3

जीवन्मुक्त विदेहराज जनक भी राम को प्राप्त कर उसी भाँति परमानंदित होते हैं, जैसे जन्म जन्मान्तर का दरिद्री व्यक्ति परम निधि पा गया हो ।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई । जनम दरिद्र मनहुँ निधि पाई ।। 1/286/3

प्रेमनगर जनकपुर वासी समस्त आबालवृद्ध नरनारीगण श्रीराम दर्शन को इस तरह समुत्सुक होकर दौड़ पड़ते हैं, जैसे अत्यंत गरीब लोग धन लूटने को दौड़ रहे हों।

धाये धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।। 1/220/2

"धाम काम" शब्द युग्म में एक विचारणीय प्रश्न बन जाता है। "धाम काम" छोड़कर भागना लोक व्यवहार में प्रचलित न होकर "काम धाम" छोड़कर भागना बोला जाता है। यदि महाकवि ने "धाये काम धाम सब त्यागी" लिखा होता, तो लोक व्यवहार के अनुकूल शब्द युग्म बन जाते तथा पिंगल शास्त्र के अनुसार मात्रा, गति, यति का व्यवधान भी नहीं होता था। अस्तु "धाम काम" त्यागने के मर्म पर किंचित् विचार कर लें।

महाकवि तो दृष्टा बनकर दृश्य के अनुसार वर्णन चिन्हित कर रहे थे। कल्पना करें – एक हलवाई अपने ग्राहक को मिठाई तौल रहा था। तराजू को एक हाथ से पकड़ कर एक पलड़े पर बाँट रखकर दूसरे पलड़े पर उस तौल के अनुसार मिठाई रखता जा रहा था। ठीक इसी समय युगल राजकुमार उसकी दुकान के समक्ष पथ पर पहुँचे। उनके दिव्य आकर्षण से आकर्षित होकर वह बदहवाश होकर हाथ में अपना काम लिये हुए दौड़कर पथ पर पहुँचकर दर्शन में तन्मय हो गया। तब प्रायः चेतना शून्य हो जाने से तराजू हाथ से छूटकर पथ में गिर गई। उसका काम पथ पर जाकर छूटा।

राम दरश के हेतु विकल ह्वै भाग रहो हलवाई ।
गिरी तराजू, गिरे बाँट सब, बिखरी सभी मिठाई ।।

इस प्रकार उसने पहले अपनी दुकान (अपना धाम) छोड़ा। बाद में उसका काम छूटा। उसी क्रम से दृश्य चित्रित करते हुए महाकवि ने "धाम काम" शब्द युग्म प्रयुक्त किया है।

ऐसे ही एक अन्य दृश्य में एक मिथिलानी वधू स्नान करके गीले वस्त्र परिवर्तन करने का उपक्रम कर रही थी। अपने हाथ में सूखे वस्त्र ले चुकी थी। पहिनने की चेष्टा करते करते ही वह भी श्रीराम दर्शनार्थ उसी भाँति होश खोकर दौड़ पड़ी थी। उसकी सास ने पथ से जाते

हुए भुवन मोहन राम का दर्शन नहीं किया था। अतः वधू द्वारा मर्यादा भंग होते देखकर उसने अपनी वधू को डॉटा कि इस तरह तेरे भागने से तुझे अर्द्धनग्न सा देखकर लोग हमें निंदा का पात्र बनावेंगे। तब उस कुलवधू का सटीक उत्तर था।

सब कोउ देखै राम कहँ, मोहिं न देखै कोय ।

तू ही ऐसी बावरी, जो देखत है मोय ।।

महाकवि देख रहे थे कि राम दर्शन विह्वल नर नारियों के धाम पहले छूट रहे थे, बाद में उनके काम छूटते थे। अतः "काम धाम" छोड़कर भागना न लिखा, वरन् "धाये धाम काम सब त्यागी" चित्रित किया गया है।

चित्रकूट में कोल किरात भी श्रीराम की सेवा में कंद मूल फल समर्पित करने के सहारे छबि धाम राम रूपी अमूल्य धन सोना लूटने हेतु चल पड़े।

कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ।। 2/135/2

इस स्थल पर ध्यान देने के बात है कि राम को केवल सोना कहा गया है, जबकि आगे भरत के लिये विदेहराज जनक की दृष्टि में साधारण नहीं प्रत्युत् "सुगंधित सोना" का प्रयोग दर्शनीय है।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ।। 2/288/1

बन पथ पर ग्रामीण नरनारी राम को पाकर ऐसे मोदमग्न थे, जैसे ढेर ढेर भर चिन्तामणि मिल गई हों।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी ।। 2/214/5

बाद में जब राम आगे का मार्ग पूछते हुए चलने को तत्पर हुए, तो वे ऐसे व्याकुल हो गये थे, जैसे विधाता उन्हें मिली हुई निधि उनसे छीने लिये जा रहा है।

मिटा मोद मन भये मलीने । बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।। 2/118/7

अन्य सभी तो इस रामरूप निधि को भगवत्कृपा से प्राप्त करते हैं, परन्तु सर्वेश्वरी जग्जननी जानकी की तो वे निज निधि हैं। उनका इस अमूल्य दुर्लभ निधि पर स्वामित्व है।

देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचानें ।। 1/232/4

भगवान राम सबके परम धन क्यों न हों? वे परमार्थ स्वरूप ब्रह्म जो हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।। 2/93/7

परन्तु मजे की बात तो यह है कि वही परमार्थ स्वरूप जीवमात्र के परम धन ब्रह्म राम स्वयं प्रेम के समक्ष परम रंक बन जाते हैं। अनाम तापस प्रसंग में कविकुल–चक्र–चूड़ामणि गोस्वामिपाद ने ऐसी ही अद्‌भुत उत्प्रेक्षा में कहा है, जिसमें राम परम रंक हैं, जबकि प्रेम पारस है।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारस पावा ।
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरें तन कह सब कोऊ ॥ 2/111/1, 2

यह अकेले कवि की उक्ति नहीं है, वरन् इसी बात की घोषणा सभी लोग कर रहे हैं कि परमार्थ स्वरूप ब्रह्म राम ने परम दरिद्री बनकर प्रेम रूपी पारसमणि को प्राप्त कर लिया है। वैसे तो इस प्रसंग में ब्रह्म एवं प्रेम दोनों अशरीरी हैं, किन्तु तापस को हृदय से लगाकर जब राम पुलकित होते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि अशरीरी ब्रह्म तथा प्रेम दोनों शरीर धारण कर मूर्तिमान होकर प्रत्यक्ष भेंट कर रहे हैं।

इस प्रसंग में कवि कहता है कि प्रेम की गति विलक्षण रूप से अलक्षित होती है। नारद भक्ति–सूत्र में "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप" कहा ही गया है। इसको पाकर फिर अन्य कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा मन में नहीं होती है, क्योंकि सभी साधनों का साध्य चरम फल तो प्रेम ही है। भगवान शंकर ने देवी उमा को सम्बोधित करके निष्कर्ष रूप में यही प्रतिपादित किया कि योग, जप, तप, दान, समस्त प्रकार के यज्ञ, व्रत नियमादि सम्पूर्ण साधनों से भगवान राम की वैसी कृपा प्राप्त नहीं होती है, जैसी निष्केवल प्रेम को देखकर वे रीझकर भक्त के वशवर्ती बन जाते हैं।

उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम ॥ 6/117(ख)

श्री राम कथा का समापन करते हुए भगवान शंकर ने अपने इसी निष्कर्ष को पुनः दोहराया कि तीर्थाटन, साधन समुच्चय, योग, वैराग्य, ज्ञान की निपुणता, समस्त प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, दम, जप, तप, नाना प्रकार के यज्ञ, प्राणिमात्र पर दया भाव, द्विज एवं गुरू सेवा, विद्या, विनय, विवेक की बड़ाई आदि जहाँ तक वेद वर्णित अनेक प्रकार के साधन कहे गये हैं, उन सबका परम फल भगवान की प्रेमभक्ति में लवलीन हो जाना है ।

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥

विनय पत्रिका में विविध प्रकार के मलों से इन्द्रियों तथा अन्तःकरण के मलीन होने का सविस्तार वर्णन है। अनेक जन्मों से पाप में लिप्त रहने के कारण मन पाप से घृणा नहीं करता। वरन उसमें रूचि लेकर उसका अभ्यासी बन गया है। अतः अधिकाधिक मल लिपटता चला जा रहा है। विषय–संग से मन मलीन है। वासना अहंकार तथा गर्व से हृदय मलीन है। सुखस्वरूप अपने सहज स्वरूप को भूल जाने से जीव पूर्णतः मलीन बन गया है। पर स्त्री को वासनामय दृष्टि से देखने से नेत्र मलीन हो गये हैं। पर–निंदा श्रवण करते रहने से कान तथा दूसरों के दोष बखानते रहने से वचन मलीन हो गये हैं। अपने स्वामी श्रीराम के चरण कमल भूल जाने से मल का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। वैसे तो इस पाप रूपी मल को धोने के लिये वेद ने व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेकानेक साधनों का वर्णन किया है, किन्तु वे सारे साधन शुद्धि हेतु निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। केवल श्रीराम पादारविन्दानुराग रूपी प्रेम जल ही सारे मलों को धोकर अंतःकरण को शुद्ध करने का सक्षम साधन है। अन्यथा पाप रूपी मल का समूल नाश होता ही नहीं है। मोहान्ध जीव करोड़ों साधन क्यों न करता रहे, बिना प्रेम जल के मोह जनित मल धुलते ही नहीं हैं।

मोह जनित मल लाग विविध विधि, कोटिहुँ जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ।।
नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे ।
हृदय मलिन वासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे ।।
पर निंदा सुनि श्रवन मलिन भये, बचन दोष पर गाये ।
सब प्रकार मल भार लाग, निज नाथ चरण बिसराये ।।
तुलसिदास ब्रत, दान, ग्यान, तप, शुद्वि हेतु श्रुति गावै ।
रामचरन अनुराग नीर बिनु, मल अति नाश न पावै ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 82

इस प्रेम जल के उद्भव की संत–शास्त्र–सम्मत प्रक्रिया इस प्रकार है। वेद–पुराणदि शास्त्र ही भगवत्कथा के अगाध जलधि हैं। इस जलधि के जल में कुछ खारापन संभावित है। अतः संतगण बादल बनकर उस जलधि से जल लेकर उसे मधुर, मनोहर, मंगलकारी बनाकर श्रीरामकथा–यश की रस–वर्षा करते हैं। यह भगवान की सगुण लीला–कथा मनोमल विमोचन करके जीव को स्वच्छ बनाने का कार्य सम्पादन करती है। इसमें अनिर्वचनीय प्रेम–भक्ति की

मधुरता एवं शीतलता ओतप्रोत रहती है।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । बेद पुरान उदधि घन साधू ।।
बरसहिं राम सुजस बर बारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ।।
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ।।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ।।

1/36/3-6

यह दुर्लभ प्रेम भक्ति यदि भगवत्कृपा से एक बार जीवन को धन्य बना दे, तो फिर कभी छोड़कर जाने का नाम नहीं लेती है, वरन् नित्य नूतन प्रवहमान होती है। विश्व में सभी पद भूतपूर्व हो जाते हैं। जैसे भूतपूर्व मंत्री, भूतपूर्व सांसद, विधायक, जिलाध्यक्ष आदि। परन्तु कभी भूतपूर्व प्रेमी भक्त शब्द नहीं सुना गया है। वह तो सदा के लिये अभूतपूर्व हो जाता है। मानस में जैसे प्रेम स्वरूप अनाम तापस को विदा नहीं किया गया है। वैसे ही प्रेम को परमात्मा अपने से पृथक कभी नहीं करता है। जैसे पारसमणि को पाकर परम रंक उसे छोड़ने का कभी नाम नहीं लेता, वैसे ही प्रेम को परमात्मा अपने से पृथक करने का विचार भी कभी नहीं करता है। प्रत्युत् प्रभु अपने प्रेमी को पाकर पुलकित होकर हृदय से लगाये रहते हैं। सबके परम धन होते हुए भी प्रेमी भक्त के लिए परम रंक बन जाते हैं। देखिये न प्रभु सबके हृदय में व्याप्त होते हुए भी जीव के जीवन में कोइ परिवर्तन नहीं कर पाते हैं।

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।। 1/23/7

किन्तु जैसे ही जीव के हृदय में प्रेम का उदय होता है, वैसे ही उसका जीवन धन्य हो जाता है। वह तृप्त हो जाता है। कृत्कृत्य हो जाता है। आनंद स्वरूप बन जाता है। प्रेम ही वह पारसमणि है, जिसके स्पर्श से लोहा जैसा अधम जीव स्वर्ण जैसा अति मूल्यवान धातु के रूप में परिवर्तित होकर लोक–पितामह ब्रह्मा से भी अधिक प्रभु का परम प्रिय अर्थात् भक्ति–भावित–भक्त बन जाता है। काकभुसुंडि के प्रति प्रभु के श्रीमुख से कहे गये वचन उल्लेखनीय हैं।

भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहुँ सम प्रिय मोहिं सोई ।।
भगतिबंत अति नीचउ प्रानी । मोहिं प्रान प्रिय असि मम बानी ।।

7/86/9,10

मसक से बिरंचि पर्यन्त सभी जीव अपने अपने अधिकार क्षेत्र में भोग परायण हैं। प्रेमी में ही उस त्याग एवं आत्मोत्सर्ग की भावना है, जिसमें वह अपने भोगसुख को अपने प्रेमास्पद के लिये

हवन करता हुआ "इंद सर्वात्मने, इंद न मम" का भाव भरता हुआ असीम तृप्ति का अनुभव करता है। यहाँ त्याग किसी वस्तु, पदार्थ, आश्रम अथवा परिस्थिति या कर्म का त्याग नहीं है, प्रत्युत् "स्व सुखेच्छा" का त्याग करके "तत्सुखे सुखित्वं" में मग्न हो जाना है। इहलोक, परलोक, दिव्य लोकादि के भोगसुख की इच्छा का लवलेश भी प्रेम में बाधक है। प्रेम में कामना, वासना, इन्द्रियसुख की इच्छा आदि किसी प्रकार की स्वसुख वांछा कलंकवत् है। केवल प्रियतम के सुख की एकमात्र सहज अभिलाषा होती है। देवर्षि नारद "यथा व्रजगोपीनाम्" निर्देशित कर उनका वंदन करते हैं। श्रीमद् भागवत महापुराण में भगवान कृष्ण के अनन्य सखा ज्ञानिनामाग्रगण्य उद्धव गोपिकाओं की चरण धूलि के आकांक्षी हैं।

आसामहो चरण-रेणु जुषामहंस्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं चहित्वा,
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।

10/47/61

अर्थात् मेरे लिए तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन धाम में कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि, जड़ी बूटी ही बन जाऊँ। अहा यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन वृजांगनाओं की चरण–धूलि निरन्तर सेवन करने के लिए मिलती रहेगी। इनकी चरणरज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य है ये प्रेममयी गोपियाँ। देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यंत कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक वेद की आर्य मर्यादा का परित्याग करके इन्होंने भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है।

आचार्य रूप गोस्वामी महाराज की दृष्टि में निर्वाण (मोक्ष) नीम की निबौड़ी सदृश कटु रस है। अस्तु हम उसका परित्याग करके उस दिव्य मधुर रस का पान करते हैं, जिस श्यामसुंदर की रूपसुधारस को गोपियाँ अपने नेत्र के चुल्लू से पीती हैं। तो उनकी चुल्लू से जो रस का जल टपकता है, उनका वह उच्छिष्ट रस ही हमारा मधुरतम पेय है।

निर्वाण निम्बरसमेव रसानुभिज्ञा, सूचन्तु रसतत्वविदो वदन्तु ।
श्यामामृतम् मदन मन्थर गोपरामा, नेत्रांजली सुरूचिता वसिता पिबामः ।।

गोस्वामिपाद तुलसीदास "विनय पत्रिका" में प्रेममयी गोपी–वृन्द की महिमा का अभिनंदन विरंचिपूज्य के रूप में करते हैं।

तो महात्मा कबीर जैसे निर्गुणवादी संत के मुख से इस रूप में वाणी निःसृत हो रही है ।

कबिरा कबिरा क्या करे, वा जमुना के तीर ।
इक गोपी के प्रेम में, बह गये कोटि कबीर ।।

निर्गुण निराकार का उपासक अपने अद्वैत ज्ञान से केवल ब्रह्म में रमण करता है। अष्टांग योगी योगपंथ से परमात्मा में लीन होता है। इन दोनों पंथों के संतों का आराध्य निस्पृह, निरीह, तटस्थ रहता है। वह तो भगवत्प्रेमी का प्रियतम भगवान है जो अचिंत्य, अनिर्वचनीय अनंत सच्चिदानंद घन परब्रह्म होते हुए भी अपने प्रेमी भक्त के लिए सौन्दर्य माधुर्यनिधि परमानंद स्वरूप बनकर नित्य निरंतर प्रेम रसास्वादन करने कराने में प्रवृत्त रहता है। वे सर्वलोक महेश्वर सर्वतंत्र स्वतंत्र होते हुए भी प्रेमी के प्रेमाधीन रहते हैं। वे प्रेमी को ही अपना प्रेम पात्र बना लेते हैं। वह प्रेमास्पद अपने को महान प्रदर्शित करके प्रेमी से नहीं मिलता, वरन् प्रेमी पर बलिहार हो जाता है। अपने महान रूप में तो वह तत्ववेत्ता ज्ञानियों से अभिन्न बना करता है। प्रेमी के सम्मुख तुच्छ बनने में वह आनंद की अनुभूति करता है। प्रेमातुर होकर प्रेमरस हेतु अधीर बनकर दौड़ पड़ता है। प्रेमी के प्रेमरस हेतु व्याकुल होकर भागा चला आता है। तब वह भगवान जो अपने परब्रह्म स्वरूप में सुख दुख से रहित है, वही अपने प्रेमास्पद रूप में अपने प्रेमी भक्त के दुःख से स्वयं दुखी हो जाता है। प्रेमी भक्त के मधुरतम प्रेमरस का आस्वादन करने को लालायित रहता है और प्रेमी के वासना, कामना विष रहित मधुरातिमधुर दिव्य प्रेमरस का पान निर्निमेष अतृप्त बनकर करता रहता है। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद एक दूसरे के प्रेमास्पद और प्रेमी बनकर समभाव से परस्पर प्रेमानंद प्रदान करते हैं। इस प्रेमानंद के लिए भगवान अपनी भगवत्ता को त्यागने में सुख का अनुभव करते हैं। भक्त भी "भुक्ति मुक्ति स्पृहा पिशाची" से विमुक्त रहकर प्रेमानंद में निमग्न रहता है। दोनों ओर एक समान स्वसुख त्याग तथा प्रियतम सुखदान की भावमयी सुधा तरंगें कल्लोल करती रहती हैं।

जैसे ही प्रेमी भक्त के मन में प्रेम धारा प्रवाहित होती है, वह प्राणिमात्र में अपने प्रेमास्पद का प्रतिरूप देखने लगता है। यही सर्वात्मभाव ईश्वर दर्शन या साक्षात्कार है। आस्तिकता की सच्ची कसौटी भी यही है। यही प्रेम मानवता की सर्वश्रेष्ठ साधना है। आत्मा का प्रकाश एवं सहज स्वभाव है। दूसरे शब्दों में जीव का सहज स्वरूप है। जीवात्मा की सहज वृत्ति है। गहराई से विचार करें तो प्रेम की उपलब्धि अप्राप्त की नहीं, प्रत्युत् अंपने नित्य स्वरूप की स्मृति

या अनुभूति है। निष्कर्ष रूप में हम इस तथ्य को हृदयंगम कर रहे हैं कि प्रेम ऐसा सार्वभौम पुरूषार्थ है, जिसके अंक में केवल पुरूषार्थ चतुष्टय ही नहीं, प्रत्युत् पुरूषोत्तम भी स्वयं समा जाता है। परमार्थ तो केवल जन्म मरण से मुक्ति तक पहुँचाता है, परन्तु प्रेम उससे भी विलक्षण परम परमार्थ है। श्री निषादराज गुह के प्रति उपदेशित श्री लक्ष्मण गीता में सुस्पष्ट है।

सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।

2/93/6,7

अर्थात् राम परमार्थ हैं तो उनका प्रेम परम परमार्थ है। अतः श्री लक्ष्मण की मान्यतानुसार प्रेम परमेश्वर से विशिष्ट है।

श्री मद्भागवत महापुराण में भगवान श्री कृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं कि मेरा प्रेमी भक्त समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र कर देता है।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं, रूदत्यभीक्षणं हसतिकचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यतेंच, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ।।

11/14/24

अर्थात् जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है। एक क्षण के लिए भी रोने का ताँता नहीं टूटता, परन्तु जो कभी कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है। कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वर से गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है। भैया उद्धव, मेरा वह भक्त न केवल अपने आपको अपने समीपवर्तियों को वरन् समस्त भुवनों को पवित्र कर देता है।

जिस ब्रह्म को श्रुतियाँ "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" कहती है, उसी को प्रेमीभक्तजन "एकं सत् प्रेम्णा बहुधा भवति" कहकर उसका दर्शन कण कण में नाना रूपों में करते हैं। उनके मतानुसार प्रेम ही जगत् कारण एवं कार्य है। सारा संसार प्रेम का ही परिणाम, उल्लास, विलास है। सारा विश्व प्रपंच प्रेम के आधार पर परस्पर जुड़ा हुआ है। समस्त सम्बन्ध प्रेम मूलक हैं। बिना प्रेम के कोई किसी से जुड़ता है क्या ? प्रेम ही सब में अनुस्यूत है। प्रेम जहाँ होता है वहाँ कोई अंतर नहीं रह जाता। किसी प्रकार के भेदभाव की कल्पना तक नहीं रह जाती। "जित देखौं तित श्याममई" दृष्टि बन जाने से प्रकृति रह ही नहीं जाती, सर्वत्र प्रेमास्पद परमेश्वर का दर्शन होता है।

वस्तुतः वह परब्रह्म तत्व जो कुछ है, जिससे हैं, जिसमें है, जिसके लिए है, आदि समस्त प्रश्नों का समाधान एक प्रेम शब्द में समाहित है। दूसरे शब्दों में कार्य, कारण, कर्त्ता, कर्म, करण और क्रिया रूप सभी स्वयं प्रेम ही है। फलस्वरूप प्रेमी किसी कामना पूर्ति या लक्ष्य सिद्धि के लिए प्रेम नहीं किया करता, वरन् उसकी भावना के आदि, मध्य, अवसान में सर्वत्र निष्काम प्रेम के दर्शन होते हैं।

प्रेम प्रेम सों होय, प्रेम सों पारहिं जैये ।

प्रेम बँध्यो संसार, प्रेम परमारथ पैये ।।

एक बार कोई योग न हो, कोई ज्ञान न हो, कोई धारणा, ध्यान और समाधि न हो। कोई भी साधना न हो। बस प्रेममात्र प्रभु कृपा से प्राप्त हो गया हो। तो यह सुनिश्चित है कि परम कल्याण रूप से परम तत्व, परम पुरूषार्थ रूप परमेश्वर उस प्रेमी से पृथक नहीं है। प्रेम ही सबका मूल है। प्रेम प्राप्त कर प्रेमी ने सब कुछ प्राप्त कर लिया।

प्रेम बराबर योग नहिं, प्रेम बराबर ध्यान ।

प्रेम भगति बिनु साधना, सबहीं थोथा ग्यान ।।

जिसने प्रेम का पाठ पढ़ लिया, वही सच्चा ज्ञानी है, वही सच्चा मनुष्य है। अपने आपका बलिदान ही प्रेम की सच्ची पहिचान है। प्रेम से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं है। प्रेम से बढ़कर संसार में दूसरा अमृत नहीं है। प्रेम से गहरा कोई सागर नहीं और प्रेम से ऊचा कोई पर्वत नहीं है।

प्रेममूर्ति आचार्य जीवगोस्वामी के अनुसार तभी तक कोई ऋद्धि, सिद्धि, समाधि, ब्रह्मानंद के चमत्कार से आकर्षित होता है, जब तक मधुसूदन कृष्ण भगवान के प्रेम की गन्ध से उसका अन्तःकरण सुवासित नहीं हुआ।

ऋद्धी सिद्धी ब्रज विजयिता सत्यधर्मा समाधि-

ब्रह्मानंदो गुरूरपि चमत्कार यत्येव तावत् ।

यावत् प्रेम्णां मधुरिपु वशीकार सिद्धोंपधीनां

गन्धोऽप्यन्तः करण सरणी पान्थतां न प्रयाति ।।

सृष्टि विशाल, असीम, ठोस होते हुए भी क्षणभंगुर है क्योंकि सृष्टि में सब कुछ भंग हो जाता है। प्रेम सूक्ष्मातिसूक्ष्म है अतः वह अभंग है। क्षणभंगुर सृष्टि में यदि हमें कुछ नित्य प्रतीत होता है, तो उसमें भी प्रेम का प्रतिविम्ब है, जो उसे अमर जैसा दिखलाता है। सृष्टि में जो कुछ

प्रेम तत्व में परमेश्वर से भी विशिष्ट इन गुणों की महिमा–वर्णन के समापन में भगवान राम की वाणी सुन लीजिये।

झीनी झीनी नेह की डोरी, मोसें जोरिन तोड़ी जाय ।
साँकर होय तो तोरि दिखाऊँ । खम्भ होय तो फारि बताऊँ ।।
वज्र होय तो पीस उड़ाऊँ ।
धनुष होय तो तोरूँ क्षण में, प्रीति न तोड़ी जाय ।। झीनी झीनी...
अग्नि होय तो मैं पी जाऊँ । पर्वत होय तो धारि दिखाऊँ ।।
सागर होय तो बाँधि बताऊँ ।
तीन लोक दै पग से नापूँ, प्रीति न नापी जाय ।। झीनी झीनी.......
बीस भुजा क्षण माहिं उखारूँ । सहस बाहु को काटि मैं डारूँ ।।
खम्भ चीर हिरणाकुश मारूँ।
भूमि होय तो उलट दूँ सृष्टी, प्रीति न पलटी जाय ।। झीनी झीनी.....
योगी चहै योग दै डारूँ । भोगी चहै भोग दै डारूँ ।।
मुक्ति चहै मुक्ती दै डारूँ ।
भक्त न लेनो कहै और कछु, बाको टारो न जाय ।। झीनी झीनी.......
सबहिं नाथ मैं नाथ कहायो । सबहिं हारि मोहिं सीस नवायो ।।
मो माया को पार न पायो ।
सो मैं चाकर बनूँ भक्त को, प्रेमानंद बलि जाय ।। झीनी झीनी.........

अध्याय - चार

प्रभु के प्रेमावतार श्री भरत

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।

2/238/8

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ।।

2/233/1

प्रथम अध्याय में लिखा गया है कि महाराज स्वाायंभुव मनु की याचना पर प्रभु यह वरदान तो दे चुके हैं कि मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करूँगा। किन्तु जब प्रभु ने विचार किया कि महाराज की याचना "चाहउँ तुम्हहिं समान सुत" शब्दावली द्वारा प्रस्तुत की गई है, तो उस याचना की शाब्दिक (शब्दशः) पूर्ति हेतु अपने समान भी एक पुत्र का अवतार न्यायोचित प्रतीत हुआ। प्रथम तीन अध्यायों में इस तथ्य का स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि प्रभु प्रेम न केवल परमेश्वर के समतुल्य है, प्रत्युत् परमेश्वर से विशिष्ट भी है। अतः प्रभु ने अपने वरदान की पूर्ति हेतु अपने प्राण प्रिय भ्राता भरत को अपने प्रेमावतार के रूप में अपने साथ प्रकट किया। अध्याय द्वितीय में श्रीप्रेमरामायण के ज्ञानकांड के संक्षिप्त उद्धरण में प्रभु एवं प्रभु प्रेमी की एकरूपता इस दोहे में व्यक्त की गई है।

प्रेमी कर बनि रूप मैं, देवौं आपहिं खोय ।
मोर रूप बनि भक्तवर, आपुहिं देवैं गोय ।। 79

ऐसे प्रेमावतार को प्रकट करके प्रभु ने परमेश्वर एवं प्रेमी की तद्रूपता का दर्शन कराया। प्रेमावतार भइया भरत मानों दूसरे रामजी ही थे। जनकपुर में प्रेमपगी मिथिलानियों के वचन हैं।

भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ।। 1/311/6

वन पथ में रूप पारखी ग्रामीण नारियों ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है, कि इनकी उम्र, शरीर, वर्ण, रूप सब कुछ ज्यों का त्यों श्रीराम जैसा है। यहाँ तक कि आंतरिक गुणों में इनका शील, प्रेम, आचरण भी राम के समान ही हैं।

बय बपु बरन रूप सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ।।

2/222/2

देवगुरू बृहस्पति ने चित्रकूट वनस्थली में स्वार्थ के कारण व्यामोह में ग्रस्त देवगण को यही समझाया कि भक्त शिरोमणि प्रेममूर्ति भरत अन्तर्वाह्य रूप में हर प्रकार से रामरूप हैं दूसरे शब्दों में उनकी परिछाहीं ही हैं। फिर उनसे किसी प्रकार के अनिष्ट का भय कैसा ? अपने डॉवाडोल मन को स्थिर करके भरत की सेवा में तत्पर हो जाओ, तो परम प्रेम की प्राप्ति होगी।

मन थिर करहु देव डर नाहीं । भरतहिं जानि राम परिछाहीं ॥

2/266/4

ध्यान देने की बात है कि छाया में न अपनी गति होती है, न अपनी मति होती है। न वह कोई स्वतः प्रेरित क्रिया करती है। न चलती है, न सोचती है, और न सुख दुख मानती है। वह तो पूर्णतः अपने सम्बद्ध व्यक्ति की काया के अधीन रहती है। तथा उसके प्रति समर्पित रहती है। व्यक्ति में तो कुछ न कुछ स्वार्थ होता ही है, पर छाया पूर्णतः निस्वार्थ होती है। व्यक्ति चलते हुए थक जाता है। छाया भी साथ साथ चली, मंजिल तक पहुँची, परन्तु थकी लेशमात्र नहीं, क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उसका अलग अस्तित्व नहीं होता। ठीक इसी भाँति भरत श्रीराम की छाया हैं। कायाश्रीराम हैं, उनकी छाया भरत हैं। श्रीराम स्वार्थ–परमार्थ दोनों का समन्वय करते हुए दोनों की रक्षा करते हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जानि जथारथ ॥

2/254/5

जबकि उनके छाया स्वरूप भरत स्वार्थ एवं परमार्थ की ओर निहारते भी नहीं हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

2/289/7

भारत एवं लंका के मध्यवर्ती समुद्र में रावण के द्वारा प्रहरी रूप में नियुक्त राहुमाता सिंहिका छाया पकड़कर उस छाया से सम्बद्ध व्यक्ति को खींचकर गिरा लेती थी। यदि कोई श्रीराम की छाया श्रीभरत को पकड़कर गिराने की कुचेष्टा करे, तो श्रीराम को गिरना होगा। यह पतन ईश्वर का पतन होगा, जो असंभव है। अतः श्रीभरत का पतन तो हो ही नहीं सकता। जो व्यक्ति अपने आप को ईश्वर को समर्पित कर देता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहं सब सौंप देता है। ईश्वर के संकेत पर यंत्र के समान कार्य करता है। उसका पतन नहीं हुआ करता है। वह स्वतः गिरेगा भी, तो भगवान के चरणों में ही गिरेगा, और तत्काल भगवान उसे उठाकर अपने हृदय से लगा ही लेंगे। चित्रकूट में प्रेम विह्वल श्रीभरत भूमि पर प्रणिपात मुद्रा में यह कहते हुए गिरे कि प्रभु

देवगुरू बृहस्पति ने चित्रकूट वनस्थली में स्वार्थ के कारण व्यामोह में ग्रस्त देवगण को यही समझाया कि भक्त शिरोमणि प्रेममूर्ति भरत अन्तर्वाह्य रूप में हर प्रकार से रामरूप हैं दूसरे शब्दों में उनकी परिछाहीं ही हैं। फिर उनसे किसी प्रकार के अनिष्ट का भय कैसा ? अपने डॉवाडोल मन को स्थिर करके भरत की सेवा में तत्पर हो जाओ, तो परम प्रेम की प्राप्ति होगी।

मन थिर करहु देव डर नाहीं । भरतहिं जानि राम परिछाहीं ।।

2/266/4

ध्यान देने की बात है कि छाया में न अपनी गति होती है, न अपनी मति होती है। न वह कोई स्वतः प्रेरित क्रिया करती है। न चलती है, न सोचती है, और न सुख दुख मानती है। वह तो पूर्णतः अपने सम्बद्ध व्यक्ति की काया के अधीन रहती है। तथा उसके प्रति समर्पित रहती है। व्यक्ति में तो कुछ न कुछ स्वार्थ होता ही है, पर छाया पूर्णतः निस्वार्थ होती है। व्यक्ति चलते हुए थक जाता है। छाया भी साथ साथ चली, मंजिल तक पहुँची, परन्तु थकी लेशमात्र नहीं, क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उसका अलग अस्तित्व नहीं होता। ठीक इसी भाँति भरत श्रीराम की छाया हैं। कायाश्रीराम हैं, उनकी छाया भरत हैं। श्रीराम स्वार्थ–परमार्थ दोनों का समन्वय करते हुए दोनों की रक्षा करते हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जानि जथारथ ।।

2/254/5

जबकि उनके छाया स्वरूप भरत स्वार्थ एवं परमार्थ की ओर निहारते भी नहीं हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।

2/289/7

भारत एवं लंका के मध्यवर्ती समुद्र में रावण के द्वारा प्रहरी रूप में नियुक्त राहुमाता सिंहिका छाया पकड़कर उस छाया से सम्बद्ध व्यक्ति को खींचकर गिरा लेती थी। यदि कोई श्रीराम की छाया श्रीभरत को पकड़कर गिराने की कुचेष्टा करे, तो श्रीराम को गिरना होगा। यह पतन ईश्वर का पतन होगा, जो असंभव है। अतः श्रीभरत का पतन तो हो ही नहीं सकता। जो व्यक्ति अपने आप को ईश्वर को समर्पित कर देता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहं सब सौंप देता है। ईश्वर के संकेत पर यंत्र के समान कार्य करता है। उसका पतन नहीं हुआ करता है। वह स्वतः गिरेगा भी, तो भगवान के चरणों में ही गिरेगा, और तत्काल भगवान उसे उठाकर अपने हृदय से लगा ही लेंगे। चित्रकूट में प्रेम विहवल श्रीभरत भूमि पर प्रणिपात मुद्रा में यह कहते हुए गिरे कि प्रभु

रक्षा कीजिए—रक्षा कीजिए—

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई । भूतल परे लकुट की नाई ॥ 2/240/2

तब श्रीराम भी प्रेम विह्वल होकर इतनी शीघ्रता से उठाकर श्री भरत को हृदय से लगाते हैं कि महाकवि ने श्रीराम को केवल उठते देखा। वे कैसे दौड़े, कब पहुँचे, कैसे उठाने की चेष्टा की? किसी के द्वारा यह सब कुछ देखा ही नहीं गया। उस समय प्रत्यक्ष में दोनों बंधुओं को हृदय से हृदय मिलाकर लिपटे हुए देखकर समस्त दृष्टा भी प्रेम विभोर दशा में आत्मविस्मृत हो गये थे।

बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपा निधान ।
भरत राम की मिलनिलखि, बिसरे सबहिं अपान ॥ 2/240

इसी भाँति लंकेश रावण के वधोपरान्त अयोध्या वापस पहुँचने पर भी भगवान श्रीराम को विरह—पयोनिधि—मग्न श्रीभरत भूमि पर गिरकर साष्टांग दंडवत करते हैं। इस बार तो चौदह वर्ष पर्यन्त अनवरत "मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत" आचरण के भार से श्रीभरत का पलड़ा इतना भारी था, कि वह भूमि पर टिका था। दूसरे पलड़े पर अनंत ब्रह्माण्ड का भार धारण करने वाले भगवान स्थित थे, फिर भी श्रीभरत का पलड़ा किसी प्रकार ऊपर नहीं उठ रहा था। अंततः भगवान को अपनी कृपा का समुद्र भी दूसरे उठे हुए पलड़े पर रखकर तथा अपना बल लगाकर सप्रयास उठाना पड़ा। तब विरहानल—दग्ध प्रेम—पयोनिधि—मग्न श्रीभरत को हृदय से लगाकर श्रीराम ऐसे शोभायमान हुए, जैसे अशरीरी प्रेम एवं श्रृंगार आज दोनों ही मूर्तिमान विग्रह धारी बनकर भेंट कर रहे हों।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये । बर करि कृपा सिंधु उर लाये ॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

7/5/6-8

छंद- राजीव लोचन श्रवत जल, तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहिं, मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं, जात नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरू सिंगार तनु धरि, मिले वर सुषमा लही ॥

7/5/छंद1

शास्त्रानुसार प्रेम एवं श्रृंगार दोनों श्यामवर्णधारी हैं। दोनों अनंत सौन्दर्य–माधुर्य–रस–सिंधु हैं। उनमें भेद दर्शन का प्रयास दुराग्रह पूर्ण ही होगा। अस्तु इस नयनाभिराम झाँकी को संत "विनीत" एक कवित्त में चित्रित करते हुए दोनों की एकरूपता व्यक्त करते हैं।

श्यामल शरीर श्याम नैनन में नीर भरे,
धाये हैं अधीर बन्धु धीर न धरत हैं ।
दोहुन के सिर जटाजूट दर्शनीय लसैं,
दुहुँ के शरीर हेरि हिय को हरत हैं ।।
शंका ये "विनीत" कौन अवध से सिधारे कौन
लंका से पधारे पहिचान ना परत हैं ।
स्वागत में कैसे पुष्पमाल पहिरावैं हम,
जाने नहिं जात कौन राम को भरत हैं ।।

इस भांति गाढ़ालिंगन में आबद्ध श्रीराम एवं श्रीभरत कियत् कालोपरान्त कुशल वार्ता के अवसर पर भी प्रकृतिस्थ नहीं हुए। श्रीराम बार बार कुशल प्रश्न कर रहे थे। प्रेम विभोर गद्गद कंठ श्रीभरत के मुख से वाणी ही प्रस्फुटित नहीं हो रही थी। उस समय के दृश्य को भगवान शंकर अम्बा पार्वती से मन–वाणी से परे परमानंदमय निरूपित करते हैं।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं, बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें, भिन्न जान जो पावई ।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान, मोहिं कर गहि लियो ।।

7/5 छंद2

अब लोग श्रीभरत एवं श्रीराम की पृथक पहिचान करने में कैसे सफल हो सके ? इसे कविरत्न श्री भैरव द्विवेदी रामायणी अपने "मानस–तरंग" में चित्रांकित करते हैं।

रूप रंग अंग राम भरत बने हैं एक,
मुग्ध मिलने से अब आगे बोलते नहीं ।
कौन कहो राम, कौन भरत बतावै कौन,
कोई पहिचान की तुला में तौलते नहीं ।।
"भैरव" न भेद खुल पाता शीघ्र कौशल में,

यदि भगवान यह मर्म खोलते नहीं ।

राम हैं वही जो पूछते हैं कुशल बार बार,

भरत उसासें भरते हैं बोलते नहीं ॥

उपवन के दृश्य में विराजमान प्रभु श्रीराम अपने प्रिय दास हनुमान से स्वयं श्रीमुख से यह उद्‌गार प्रकट करते हैं कि मुझमें और श्रीभरत में कोई अंतर नहीं है।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहिं मोहिं कछु अंतर काऊ ॥

7/36/7

भक्ति सिद्धान्त में ऐसी मान्यता है कि प्रेम ही भक्त और भगवान की दूरी मिटाकर दोनों का योग कराकर एकाकार कर देने वाला तत्व है। विज्ञान में तो नियमों का आश्रय लेकर ऊर्जा शक्ति प्रकट की जाती है। पर उन नियमों में यह सामर्थ्य नहीं है कि शक्ति के पीछे छिपे हुए शक्तिमान को प्रकट कर सके। शक्तिमान को प्रकट करने के लिए उत्कट प्रेम चाहिए। शक्ति प्रकट होती है नियम से, जबकि शक्तिमान प्रकट होता है प्रेम से। गणित में नियम होता है। उसमें एक और एक मिलकर दो होते हैं। जबकि प्रेम में गणित के नियम नहीं चलते। प्रेम में एक और एक मिलकर एक ही बन जाता है। यदि दो रह गये, तो उनमें प्रेम हुआ ही नहीं। कविवर रहीम का प्रसिद्ध दृष्टान्त है।

रहिमन प्रेम सराहिये, मिले होत रँग दून ।

ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥

इस प्रकार दो पृथक रंग मिलकर अपना स्वरंग परिवर्तित करके एक अभिन्न रंग बन जाता है। इसी प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम योग से दो नहीं रह जाते, वे एक बन जाते हैं।

श्रीराम अपनी प्राणप्रिया वैदेही जानकी को संदेश देकर कहते हैं कि मेरा मन तुम्हारे मन में मिलकर एक होकर वहीं समाहित हो गया है।

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा । जानत प्रिया एक मनु मोरा ॥

सो मनु सदा रहत तोहिं पाहीं । जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं ॥

5/11/6-7

ठीक इसी प्रकार भगवान् श्रीराम एवं प्रेमावतार भक्त भइया श्रीभरत दोनों इतने एक रूप हैं कि माता कौशल्या को जो अनुभूति श्रीराम को गोद में लेने पर प्राप्त होती है। ठीक वही अनुभूति श्रीभरत के प्रति भी प्राप्त होती है।

वन गमन के समय अम्बा कौशल्या ने श्रीराम को हृदय से लगा कर प्रेम प्रदान किया, तो वात्सल्य–रस उमड़कर उनके स्तनों से दुग्ध धार बनकर प्रश्रवित होने लगा।

गोद राखि पुनि हृदयँ लगाये । श्रवत प्रेमरस पयद सुहाये ।।

2/52/4

उधर ननिहाल से आने पर जब श्रीभरत को बिलखते देखकर माता कौशल्या ने उन्हें हृदय से लगाया, तो ठीक वैसी ही दशा प्रत्यक्ष हो गई। स्मरणीय है कि इस समय प्राणनाथ के स्वर्गगमन के कारण अनेक दिनों से माता कौशल्या ने अन्नजल ग्रहण नहीं किया था। परम शोकाकुल दशा में विलाप करते रहने के कारण मृतप्राय हो रहीं थी। फिर भी स्नेह–विह्वला अम्बा ने श्रीभरत को श्रीरामवत् वात्सल्य प्रदान किया। अतः तदनुरूप दुग्धधार प्रश्रवित होने लगी।

अस कहि मातु भरत हियँ लाये । थन पय श्रवहिं नयन जल छाये ।

2/169/5

इस स्थल पर संत "विनीत" की कविता की दो पंक्तियों में अम्बा कौशल्या का कथन उद्धृत करने योग्य है।

मिल गया मुझको वही तू, राम सचमुच राम हैं ।
तू वही है, वह तू ही है, भिन्न केवल नाम है ।।

श्रीराम एवं श्री भरत के नाम में भी एक समान प्रभाव है। श्रीराम का नाम लेने से समस्त अंमगलों का विनाश हो जाता है। ऐसा भगवान शंकर का वचन है।

जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं । सकल अमंगल मूल नसाहीं ।।
करतल होहिं पदारथ चारी । तेइ सियराम कहेउ कामारी ।।

1/315/1–2

श्रीराम नाम की महिमा अनिर्वचनीय है। अन्य की तो बात ही क्या है, स्वयं भगवान राम भी अपने राम नाम की महिमा को शब्द सीमा में बाँधकर व्यक्त नहीं कर सकते हैं।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।

1/26/8

उधर स्वयं भगवान् राम के श्रीमुख वचन भरत के नाम की महिमा का उद्घोष कर रहे हैं, कि भरत का नाम जप करने से समस्त पाप तापों का उपशमन हो जावेगा तथा लोक में यश

एवं परलोक में सुख की प्राप्ति होगी। अस्तु मेरे नाम का नहीं, श्री भरत के नाम का जप परम श्रेयष्कर है।

मिटहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अंमगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नाम तुम्हार ।।

2/263

प्रेमास्पद भगवान श्रीराम तथा उनके प्रेम स्वरूप श्री भरत के नाम की महामहिमा एक समान होना स्वाभाविक है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण के वचन हैं कि मैं और मेरा प्रेमी भक्त परस्पर एक दूसरे के हृदय में निवास करते हैं। अतः एक रूप होते हैं।

समोऽहं सर्वभूतेषु न में द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

9/29

अर्थात् मैं सर्वभूतों में व्यापक परमात्मा हूँ। न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय है। परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट होता हूँ।

परमेश्वर सब जगह व्याप्त होते हुए भी अपने प्रेमी भक्त में उसी तरह विशेष रूप से प्रकट होता है, जैसे सूक्ष्म रूप से सर्वत्र व्यापक अग्नि साधनों द्वारा प्रकट करने से ही प्रत्यक्ष होती है। इसी तरह दूध में व्याप्त मक्खन विशेष प्रक्रिया द्वारा ही प्रकट होकर उपयोगी बनता है।

इस विषय में युग–तुलसी उपाधि से विभूषित पद्म–भूषण श्रीराम किंकर उपाध्याय ने अपने प्रवचन में एक सटीक दृष्टांत प्रस्तुत किया था। एक व्यक्ति की गाय पीड़ा से कराह रही थी। वैद्य ने बतलाया कि आधा पाव काली मिर्च पीसकर उसे गाय के एक पाव शुद्ध घी में फेंटकर गाय को चटा दो। उस व्यक्ति ने आधा पाव काली मिर्च पीसकर गाय को चटाई तो काली मिर्च के तीखेपन से गाय अधिक चिल्लाने लगी। वैद्य ने पूछा कि तुमने दवा ठीक ढंग से नहीं दी है क्या ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया मैने आधा पाव काली मिर्च पीसी। फिर विचार किया मेरी गाय प्रति दिन पाँच लीटर दूध देती है, जिससे पाव भर से अधिक घी तैयार हो जाता है। अतः आज दूध नहीं दुहूँगा, तो गाय के पेट में स्थित पाव भर घी से काली मिर्च ओतप्रोत हो जावेगी । वैद्य ने डॉटा कि मूर्ख जब तक दूध से प्रक्रिया द्वारा घी नहीं बनाया जावेगा, तब तक दूध में व्याप्त घी काम में नहीं आवेगा।

उक्त दृष्टान्त के अनुसार सबके हृदय में स्थित परमेश्वर को प्रेम से प्रकट करना ही श्रेयष्कर होगा।

व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारीं ॥
नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥

1/23/6, 7, 8

प्रभु को अपने हृदय में विराजमान करके उनके हृदय में स्थान पाने वाले प्रेमीभक्त है श्रीहनुमान एवं श्री भरत

प्रनवउँ पवन कुमार, खल बन पावक ग्यानघन ।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ॥ 1/17
उधर श्रीराम है मंगल भवन । वे मंगल के घर हैं ।
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी ॥ 1/112/4

मंगल के इस भवन में वही निवास कर सकेगा, जो स्वयं मंगलमूर्ति होगा। मंगलमूर्ति हैं श्री हनुमानजी। विनय पत्रिका में श्री हनुमान ही मंगलमूर्ति वर्णित किये गये हैं।

मंगल मूरति मारूत-नंदन । सकल अमंगल-मूल निकंदन ॥ पद संख्या 36

अब श्री भरत के हृदय में क्षण–प्रतिक्षण श्रीराम का निवास है भगवती सरस्वती इस तथ्य की घोषणा करती हैं।

भरत हृदयँ सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

2/295/7

तो श्रीराम के हृदय में निरन्तर श्रीभरत का चिन्तन चलता रहता है । श्रीभरत ही श्रीराम के हृदय धन हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फल दूसर नाहीं ॥
रामहिं बंधु सोच दिन राती । अंडहिं कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥ 2/7/7-8

श्रीभरत के हृदयांगन–बिहारी श्रीराम स्वाभाविक रूप से उनके परमाराध्य हैं, जिनके पावन नाम का जप तथा श्रीराम गुणगान में निरन्तर लवलीन रहना उनकी अहर्निशि दिनचर्या हैं। श्रीहनुमान नें इसी रूप में उनका दर्शन किया था।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती । 7/2/3

उधर भगवान श्रीराम ने भाई श्रीभरत को आराध्य बनाकर उनके नाम का जप ग्रहण कर लिया है। इस सम्बन्ध में देवगुरू बृहस्पति ने देवराज इन्द्र को अवगत कराया था।

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।। 2/218/7

भगवान श्रीराम एवं उनके परम प्रेमावतार भइया श्रीभरत के ऐक्य–दर्शन के अनन्तर प्रेम–महिमा–गान द्वारा इस अध्याय का समापन–

प्रेम हटा देती दूरी को, प्रेम मिटा देता व्यवधान ।
प्रेम भुला देता प्रपंच सब, प्रेम मिला देता भगवान ।।

सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा प्रस्तुत एक प्रेमोन्मादिनी का भक्तिगीत–

देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं ।
पूजा में बहुमूल्य भेंट वे, रंग रंग की लाते हैं ।।
धूमधाम से साजबाज से, मँदिर में वे आते हैं ।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुयें, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ।।
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई ।
फिर भी साहस कर मंदिर में, पूजा करने हूँ आई ।।
धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झाँकी का श्रृंगार नहीं ।
हाय गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं ।।
स्तुति कैसे करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं ।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं ।।
नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई ।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ चली आई ।।
पूजा और पुजापा प्रभुवर इसी पुजारिन को समझो ।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो ।।
मैं उन्मत्त प्रेम की लोभिन, हृदय दिखाने आई हूँ ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ ।।
चरणों में अर्पित है प्रभुवर, चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ।।

रामायण दास
ज्योतिर्विद साहित्याचार्य
श्रीराम हर्षण कुंज अयोध्या

अध्याय – पाँच

श्री भरत प्रेम की अनिर्वचनीयता

प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ।।

1/36/6

भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु, अह मम मलिन जनेषु ।।

2/225

ब्रह्म की भाँति प्रेम का विषय भी नेति–नेति कह कर व्यक्त किया जाता है। प्रेम को शब्दों की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। परिभाषा सुनिश्चित करने हेतु भरसक प्रयास करने पर असफल हो जाने पर ही ब्रज कोकिल सत्यनारायण "कविरत्न" बोल उठे थे–

उल्टीं पुल्टीं करीं, अखिल जग की सब भाषा ।
पै अब लौं नहिं बनी, प्रेम पूरी परिभाषा ।।

श्री प्रेम रामायण में मैथिल राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि ने अपने भाम श्रीराम से प्रश्न किया कि प्रेम क्या है? इसकी परिभाषा समझाने की कृपा कीजिये। तब श्रीराम द्वारा तत्सम्बन्धी विशद–विवेचन प्रस्तुत किया गया।

हे कुमार ! प्रेम तो अनिर्वचनीय है। यह मन, वाणी, चित्त, एवं बुद्धि सबसे परे है। जैसे गूँगा व्यक्ति रस का स्वाद केवल अनुभव कर सकता है। अपने इस आह्लाद का वर्णन नहीं कर सकता है। ऐसे ही प्रेम की परिभाषा नहीं बताई जा सकती है। शाखाचन्द्र न्याय से ऐसा समझ में आता है कि जब अपने प्रेमास्पद के स्मरण से हृदय में कसक उठती है, तब उसका हृदय में स्पर्श होने से प्रेमी अपने स्वत्व को भूल जाता है। मन, बुद्धि, चित्त में भवरस विलीन हो जाता है। श्याममयी दृष्टि बन जाती है। एक क्षण भी प्रेमी भक्त प्रेमास्पद के स्मरण बिना रह नहीं सकता। जैसे मछली जल से विलग करने पर तड़पती है, वैसे ही प्रेमी प्रेमास्पद के बिना तड़पता है। संभव है कि ऐसी कसक एवं तड़पन का नाम वेदों ने प्रेम शब्द से सम्बोधित किया है।

प्रेम अनिर्वचनीय कुमारा । मन बानी चित बुद्विहिं पारा ।।

यथा मूक नहिं रस कर स्वादा । बरणि सकै अनुभव अहलादा ।।
तथा प्रेम परिभाषा नाहीं । तदपि सुनहु जस मोहिं लखाहीं ।।
सुरति करत जन जियहिं मँझारी । उठति करोय कसक इक न्यारी ।।
हिय महँ परस मोर जब होई । तुरत जात जन आपा खोई ।।
मन चित बुधि बिच जग रस नाहीं । श्यामहिं श्याम झूल दृग माहीं ।।

दोहा– बिनु सुमिरन छिन एकहूँ, रहि न सकत जन मोर ।
जल बिनु मछली सम तुरत, तलफत जगत विभोर ।।

ज्ञान कांड 96

जब श्याममयी दृष्टि बन जाय, जैसी कि नीचे उद्धृत पद में प्रकट की गई है।

जित देखौ तित श्याममई है ।
श्याम कुंज बन जमुना श्यामा, श्याम बरन घन घटा घई है ।।
सब रंगन में श्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है ।
हौं बौरी की लोगन ही की, श्याम पुतरिया बदल गई है ।।
चन्द्रसार, रविसार श्याम है, मृगमद श्याम काम बिजई है ।
नीलकंठ को कंठ श्याम है, मनो श्यामता बेलि बई है ।।
श्रुति को अक्षर श्याम देखियत, दीप शिखा पर श्यामतई है ।
नर देवन की कौन कथा है, अलख ब्रह्म छबि श्याम मई है ।।

नारायण स्वामी के दोहों में भी ऐसा ही दर्शन कराया गया है ।

नारायण जाके हियें, सुन्दर श्याम समाय ।
फूल पात फल डार में, ताको वही लखाय ।।
दर दिवार दर्पण भये, जित देखौ तित तोहिं ।
काकर पाथर ठीकरी, भये आरसी मोहिं ।।

श्री प्रेम रामायण में ऐसी ही श्याममयी दृष्टि दशा का नाम प्रेम बतलाया गया है। जब प्रेमास्पद की सुरति से प्रेमी तड़पता रहे। अहं और मम का रोग विनष्ट हो जावे। स्वसुख चाह निर्बीज हो जावे। तत्सुखे सुखित्वं में स्थिति हो जावे। स्वत्व पूर्णतः विनष्ट हो जावे। जहाँ विधि–निषेध–नियम की पहुँच न हो। कार्य–कारण से परे सुख–स्वरूप स्थिति हो। संभव है ऐसी ही महा–समाधि दशा का नाम प्रेम रखा गया हो।

रश्याम दृष्टि जब आँखिन होई । संभव प्रेम कहैं तेहि लोई ।।
छिन बिनु सुरति स्वप्रिय के जबहीं । रहि न सकै तलफत तन तबहीं ।।
संभव प्रेम ताहि कह लोगू । मैं अरू मोर जहाँ नहिं रोगू ।।
निज सुख चाह बीज नसि जाई । मम सुख चाह हृदय अधिकाई ।।
संभव दशा सो प्रेम कहावै । आपा नसि इक प्रेमिहिं भावै ।।
बिनु कारण सूक्षम सुठि प्रेमा । बिधि-निषेध जहँ रहैं न नेमा ।।
कारण-कार्य परे सुख रूपा । जानै जो अनुभवै अनूपा ।।

दोहा- कुँअर यथारथ प्रेम की, परिभाषा नहिं होय ।
अनुभव महँ जान्यो परै, बरणि सकै नहिं कोय ।।

श्री प्रेमरामायण ज्ञान कांड 97

पहले भी संकेत किया गया है कि प्रेम की अनिर्वचनीय महिमा के तत्वदर्शी महात्मा कबीर ने कितनी सटीक बात कही है कि वाक्य ज्ञान से परिपूर्ण पोथियों को पढ़कर विद्वता का दावा करने वाला शुष्क ज्ञानी पंडित पद से विभूषित करने योग्य नहीं है, वरन् कोई व्यक्ति, मात्र ढाई अक्षर वाले शब्द प्रेम का पाठ हृदयंगम करके प्रेमविभोर दशा में मग्न हो जावे तो वही सच्चा पंडित है।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआँ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ।।

यह ढाई अक्षर वाला प्रेम शब्द कह सुन लेना सरल है, परन्तु इसकी उपलब्धि भी सरल है क्या ? इसकी उत्पत्ति कहीं किसी खेत बाड़ी में खेती करके हो सकती है क्या? या किसी हाट बाजार में मूल्य चुकता कर खरीदी जा सकती है क्या? क्या कहीं कोई कुबेर सदृश धनपति इसे प्राप्त कर सकते हैं ? या चक्रबर्ति नरेश अपने कोषालय में शोभा हेतु इसे रखने में सक्षम हैं क्या ? यह तो महान योगी तपस्वी सिद्धों के लिये भी दुष्प्राप्य है। प्रेम वल्लरी गीत काव्य के पद संख्या 95 में प्रेम प्राप्ति हेतु आत्म बलिदान की विधि वर्णित है। खुदी (अहं) को मिटा देने पर ही साहब (परमात्मा) प्रेम के रूप में वरण करता है। इस प्रेम नगरिया में कोई सिर (अहं) लेकर प्रवेश नहीं कर सकता है। यहॉ तो अपनी हस्ती (स्वत्व) रखना जुर्म है। उससे प्रियतम रूष्ट होकर दूर हो जाता है। अहं (मैं) और मम (मेरा) के समर्पण बिना रसिकेश्वर राम नहीं मिलते हैं।

भाई प्रेम न हाट बिकावै ।

खेत न उपजै, खान न निकसै, कहहु कहाँ ते पावै ।।

शीश के मोल मिलै ढिग प्रेमिन, राव रंक लै जावै ।।

किये खत्म जो खुदी को जग में, सो साहब उर लावै ।।

कलम काटि सिर अपनो देखो, कर में सदा सोहावै ।।

नेह नगरिया चलै जो कोऊ, सिर लै कबहुँ न धावै ।।

हस्ती अहै शुमार जुर्म में, प्रियतम अति रिस हावै ।।

"हर्षण" मैं अरू मोर गये बिनु, राम रसिक नहिं आवै ।।

प्रेम वल्लरी पद संख्या 95

तात्पर्य यह कि प्रेम किसी साधना का परिणाम नहीं हो सकता। साधनायें सभी अधूरी हैं। इसलिए साधना का उद्देश्य प्रेम नहीं, प्रत्युत प्रेम के लिए पात्रता को प्राप्त करना है। जहाँ ज्ञान की शोभा उसकी एकरूपता में है, वहीं प्रेम तो प्रतिक्षण वर्द्धमान होता रहता है। इसी में प्रेम की सार्थकता है ।

प्रेम सदा बढ़िबो करै, ज्यों शशिकला अशेष ।

पै पूनो यामें नहीं, ताते कबहुँ न शेष ।।

प्रेम की निरन्तर अभिवृद्धि होने से प्रेम की इयत्ता नहीं हो सकती। इयत्ता न होने से प्रेम का चित्रांकन नहीं किया जा सकता है। श्रृंगार रस के महाकवि बिहारी ने अपनी नायिका की छबि क्षण–प्रतिक्षण वृद्धिमान होते रहने के कारण संसार के समस्त चित्रकारों का पराभव दर्शाया है।

लिखन बैठ जाकी छबिहिं, गहि गहि गरब गरूर ।

भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

ऐसी ही स्थिति प्रेम का वर्णन करने में बन जाती है, क्योंकि प्रेम जीवन के अन्तर्तम की अलौकिक स्फूरणा है। वह जीवन की महानतम उदात्त भावना है। वह सृष्टि का अवलम्ब और जीवन का प्रयोजन है। प्रेम ही भूलोक का अमृत है। इसकी पिपासा प्रत्येक हृदय की आध्यात्मिक पिपासा है। इस दुःखालयँ अशाश्वतं संसार में यदि कोई रस है, सार है, तथ्य है, तो वह केवल प्रेम ही है। जब मानव हृदय में प्रेमभावना प्रादुर्भूत होती है, तो वह दया, करूणा, सेवा, उदारता, सहयोग, परोपकार आदि मानवता को विभूषित करने वाले सद्गुणों का मूर्तिमान

स्वरूप बन जाता है। तब हिंसा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि समस्त दुर्भावनायें समाप्त हो जाती हैं। प्रेम में हिंसा, परपीड़न की छाया भी नहीं पनप सकती, क्योंकि वहाँ तो करूणा का स्थायी निवास होता है।

प्रेम रसात्मक सरस रस , प्लावन करन समाज ।

अनिर्वचनीय इक तत्व है, प्रति हृद मध्य बिराज ।।

ऐसे महामहिमामय अनिर्वचनीय प्रेम तत्व के परिप्रेक्ष्य में श्रीभरत के परम प्रेम के विषय में लेखनी एवं वाणी का असहाय मूकवत् बन जाना स्वाभाविक है। स्वयं भगवान श्रीराम भी श्रीभरत प्रेम की महामहिमा को इदमित्थं नहीं कह सकते। चित्रकूट दरबार में श्रीराम अपने परमप्रिय श्री भरत के विषय में उद्‌गार प्रकट करने को खड़े हुए। जब उन्हें समस्त विश्व में श्रीभरत के समान कहीं कोई उपमान नहीं मिला, तो श्रीराम को भरत की उपमा भरत से ही देते बनी।

करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्हतात ।

गुर समाज लघुबंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ।। 2/304

पहले वहीं चित्रकूट की पावन वसुन्धरा में विदेहराज जनक अपनी प्राणप्रिया सुनयना से इस विषय में अपने उद्‌गार प्रकट करने लगे। पहले तो उन्होंने अपनी बुद्धि के वैशिष्य को बतलाया कि धर्म के गूढ़ रहस्यों के उद्‌घाटन, राजनीति की जटिल समस्याओं के समाधान तथा ब्रह्म जिज्ञासा सम्बन्धी अकथ विषय–निरूपण में मेरी बुद्धि का सक्षम प्रवेश है, क्योंकि मुझे योगेश्वर, ज्ञान शिरोमणि महर्षि याज्ञवल्क्य का कृपा–प्रसाद मिला हुआ है। लेकिन अपनी उसी तत्वविवेचनी प्रज्ञा के बल पर दुर्लघ्य सुमेरूवत् भरत महामहिमा के शिखर तक पहुँचने की बात तो बहुत दूर है, मैं तो धोखे से भी उसकी छाया तक का स्पर्श करने में समर्थ नहीं हूँ।

धरम राजनय ब्रह्म बिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ।।

सो मति मोरि भरत महिमाहीं । कहै काह छलि छुअति न छाहीं ।।

2/288/4-5

आगें इस संदर्भ में कुछ कह सकने का प्रयास करने वाले संख्या की अवधि नौ वक्ताओं की स्थिति स्पष्ट करने लगे ।

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । कबि कोबिद बुध बुद्गि विशारद ।।

2/288/6

विचारणीय है कि इस सूची में कितने उच्च कोटि के परम समर्थ वक्ता परिगणित किये गये हैं

(1) चारों वेदों का गायन करने वाले जगत्पिता ब्रह्माजी

(2) विद्या वारिधि बुद्धि विधाता गणपति गणेश

(3) दो हजार जिन्ह्वाओं से भगवान् का गुणानुवाद गाने वाले श्रीहरि के विश्रामदायक पृथ्वी के आधार शेषनाग

(4) वेद-विख्यात त्रिभुवन गुरू भगवान शंकर

(5) विद्या बुद्धि की अधिष्ठात्री वीणापाणि देवी शारदा

(6) "जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि" उक्ति सार्थक कर्त्ता कवि

(7) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का साक्षात्कार प्राप्त ब्रह्म ज्ञानी

(8) सारासार - पारखी, तत्व-विचार-निपुण बुद्धिमान

(9) स्वयं प्रकाशिका प्रज्ञा से आलोकित विशेष विद्वान

इस प्रकार विदेहराज ने नौ अप्रतिम वक्ता परिगणित किये। इसमें देवलोक के चार वक्ता विधि, शिव गणपति, शारदा, पाताल लोक के शेषनाग एवं भू लोक के चार वक्ता कवि, कोविद, बुध एवं बुद्धि विशारद शामिल थे। यद्यपि ये समस्त नौ अप्रतिम वक्ता भगवान के गुण–गायन में प्रवीण हैं, परन्तु जब उन्होंने भरत की महा–महिमा का अनुसंधान करना चाहा, तो उनकी गति उसी प्रकार अवरूद्ध हो गई, जैसे मछली जलहीन भूमि पर वहीं पड़ी–पड़ी छटपटाती रहती है, आगे नहीं बढ़ सकती।

अगम सबहिं बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गम धरनी ।।

2/289/1

कारण यह है कि असीम को एक ससीम बाँट के पैमाने से तौलने का प्रयास उपहासास्पद ही होता है। भला सुमेरू पर्वत को कोई सेर जैसे छोटे बाँट के द्वारा तौल सकता है ? भरत तो अनंत, असीम, अनुपमेय महापुरूष हैं। भरत के समान केवल भरत ही हैं। जो विषय, मन, बुद्धि, वाणी और तर्क सबसे परे हो, सर्वोपरि प्रेम की अवधि (सीमा) हो, उसका वर्णन असंभव ही तो होता है। जब प्रेमतत्व वर्णनातीत है, तो परमप्रेम का वर्णन कैसे हो सकता है।

निरवधि गुन निरूपम पुरूष, भरत भरत सम जानि ।

कहिअ सुमेरू कि सेर सम, कबि कुल मति सकुचानि ।। 2/288

आश्चर्य की बात यह है कि श्रीभरत सर्वगुण सम्पन्न हैं। पर उनमें गुणीपन का अहंकार लेशमात्र नहीं है। समस्त पुण्यों का आश्रय होते हुए भी पुण्यात्मा होने की वृत्ति का सर्वथा अभाव है, क्योंकि वे अपने स्वतंत्र अस्तित्व को विसर्जित करके रामाकार बन गये हैं। अतः हे सुनयने, तुम भली भाँति जान लो कि, उन्हें केवल श्रीराम ही जान सकते हैं। पुनः ज्ञाता होने पर भी श्रीराम इस भरत महा–महिमा का वर्णन करने में असमर्थ ही रहेंगे, क्योंकि यह विषय तो अनिर्वचनीय है। फिर वाणी का विषय कैसे बनाया जा सकता है ?

भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।
2/289/2

सचमुच में यह वाणी या भाषा का विषय नहीं। जो भी इसके निरूपण का प्रयास करता है, उस निरूपण कर्ता की करारी हार ही होती है। यह संयोग–वियोग उभय स्थितियों में सर्वथा एकरस रहने वाला तत्व है। इसकी अनिर्वचनीयता भी जगत से पृथक जगतपति की भाँति मात्र अनुभव का ही विषय है। इस अगाध असीम रससागर के भाव–कल्लोल में डूबने वाले डूबे ही रहते हैं। उन्हें यहाँ से निकलने की न तो वांछा है और न कोई राह ही है। महाकवि रसखानि के शब्दों में–

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।
जो आवत यहि ढिंग बहुरि, जात नहीं रसखान ।।

प्रेमियों का दिव्य मन समस्त प्रकृति जगत से ऊपर उठा हुआ दिव्याति दिव्य होता है। यहाँ तो मोम के अश्व पर चढ़कर आग के गोले के अंदर से निकलने में भय की नहीं, आनंद की अनुभूति होती है। इस पथ पर उफनाते हुए प्रेम के प्याले मिलते हैं। इसके विलक्षण स्वाद के सामने सुधा भी तुच्छातितुच्छ है। क्यों न हो ? प्रेमी तो प्रेमासव का पानकर मस्त हो जाता है। उसके लिए तो देहाध्यास विलुप्त हो जाता है। जीवन मरण का भय शेष रहता ही नहीं है। जब श्रीभरत के साथ समस्त अयोध्यावासी श्रीराम दर्शनार्थ चित्रकूट पथ पर अग्रसर थे, तो उनकी देह–दशा का अवलोकन कीजिये –

करत मनोरथ जस जियँ जाके । जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ।।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं ।।

ऊपर से बाह्य रूप में देखने पर शराबी जैसी मदमस्त दशा दिखाई देती है, परन्तु प्रेम की यह स्थिति परम दिव्य होती है। कानों में सर्वत्र प्रियतम का स्वर, आँखों में प्रियतम का रूप जिह्वा में प्रियतम का नाम तथा नासिका में प्रियतम के श्रीअंगों का सौरभ समाया रहता है। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद का दिव्य और अटल संयोग आत्मा को आनंद–विभोर किये रहता है।

कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,

हिय में न जानि परै, कान्ह है कि प्रान है ॥

जीव और ब्रह्म के बीच की दो अंगुलि की दूरी, जिसे काकभुसुंडि अनुभव कर रहे थे कि श्रीराम की भुजा उनसे केवल दो अंगुलि की दूरी पर है, प्रेमी के लिए समाप्त हो जाती है।

ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात ।

जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहिं मोहिं तात ॥ **7/79(क)**

ब्रह्म को बाँधने में यशोदा मैया की डोरी दो अंगुल छोटी पड़ जाती थी। तब उन्होंने उस अपरिमेय ब्रह्म को प्रेम की ढाई अंगुल की डोरी से बाँध लिया। ये प्रेम के ढाई अक्षर उस परब्रह्म को बाँधने में समर्थ है, जो अपनी प्रबल कर्म की डोरी से मशक से ब्रह्मा पर्यन्त सबको बाँधकर नचा रहा है।

जिन बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोरी ।

सोइ अवछिन्न ब्रह्म जसुमति, हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥

जाकी माया बस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो ।

करतल ताल बजाय ग्वाल – जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥

विनय पत्रिका पद संख्या 98

सृष्टि क्रम में जड़ता से चेतना की दिशा में बढ़ते जाना व्यक्ति का उत्थान है, किन्तु प्रेम राज्य में जड़ चेतन बन जाता है, जबकि चेतन प्रेमसमाधि में जड़ बन जाता है।

होत न भूतल भाउ भरत को ।अचर सचर चर अचर करत को ॥

2/238/8

चैतन्य के जड़ बन जाने पर वह उस निश्त्रैगुण्य की स्थिति में पहुँच जाता है, जिसे देखकर जड़ता की ही भ्रांति होती है। वस्तुत उस स्थिति में जड़ चेतन का भेद ही समाप्त हो जाता

है। परम प्रेमी सुतीक्ष्ण अविरल प्रेमभक्ति में विभोर होकर मार्ग में ही जड़वत् अचल होकर बैठ गये थे।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखैं तरू ओट लुकाई ।।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन भव भीरा ।।
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।।

3/10/13–15

मुनि की देह की पुलकावली कटहल के फल का दृश्य उपस्थित कर रही थी । गोस्वामी जी ने मानस–सर वर्णन में पुलकावली के तीन स्तर वाटिका, बाग, वन के रूप में प्रस्तुत किये हैं। प्रथम पुलक वाटिका है, अधिक वृद्धि होने पर पुलक बाग का रूप धारण करती है तथा अधिकतम स्तर पर वह वन के रूप में प्रकट होती है। इसमें परमानंद स्वरूप पक्षि वर्ग बिहार करते हैं। सुन्दर मन रूपी माली नेत्रों के प्रेमाश्रुरूप प्रेम जल से इनका सिंचन निरन्तर करते हैं।

पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारू ।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारू ।। 1/37

विशेष विकसित पुलकावली को प्रेम वन की संज्ञा दी गई है। उस स्थिति के प्रेमी का हृदय भगवान् सीताराम की विहार–स्थली बन जाता है। जिस प्रकार लौकिक वन किसी माली के पुरूषार्थ का परिणाम न होकर ईश्वरीय देन है, क्योंकि वन में न तो वृक्षारोपण करना पड़ता है और न उन्हें सींचना पड़ता है। उसी प्रकार भगवत्प्रेम प्रभुकृपा से प्राप्त होता है। प्रभु कृपा ही उसकी प्रेरक, रक्षक सब कुछ है।

रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारू ।
तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुबीर बिहारू ।। 1/31

यदि इस प्रेमवन में कोई मार्ग भूल जावे, तो देवता उसे मार्ग दिखाते हैं ।

देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ।।
सखहिं सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ।।

2/238/5,6

अन्यथा प्रभु स्वयं ही जैसे प्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण को खोजते हुए पहुँचे थे, वैसे ही, परम प्रेमी भरत के पास दौड़कर पहुँच जाते हैं। इस अध्याय के समापन में आचार्य महाप्रभु प्रणीत

विनय–वल्लरी का पद संख्या 111

ऐसो प्रेम मूर्ति कोउ नाहीं ।

महाभागवत भरत यथा जग, तीन काल के माहीं ॥

सीताराम चरण अति प्रीती, अगम अपार अथाहीं ।

अनुपम अकथ कहै को कोविद, विधि हरि हर नहिं पाहीं ॥

ऋषि मुनि संत देव लखि भूले, भरत भाव भल माहीं ।

भरत प्रेम कणिका जल बूड़े, जनक वशिष्ठ सोहाहीं ॥

सकल धरम धुर ज्ञान बिरागी, राम विरह बहु–दाही ।

"हर्षण" कृपा–कोर प्रभु पेखहु, पावहुँ प्रेम अचाही ॥
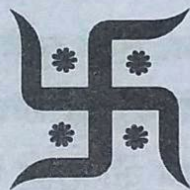
श्री सिद्धि सदन अयोध्या श्रीरामार्चा महायज्ञ में श्री गुरुदेव भगवान के वरदहस्त से कृतकृत्य लेखक
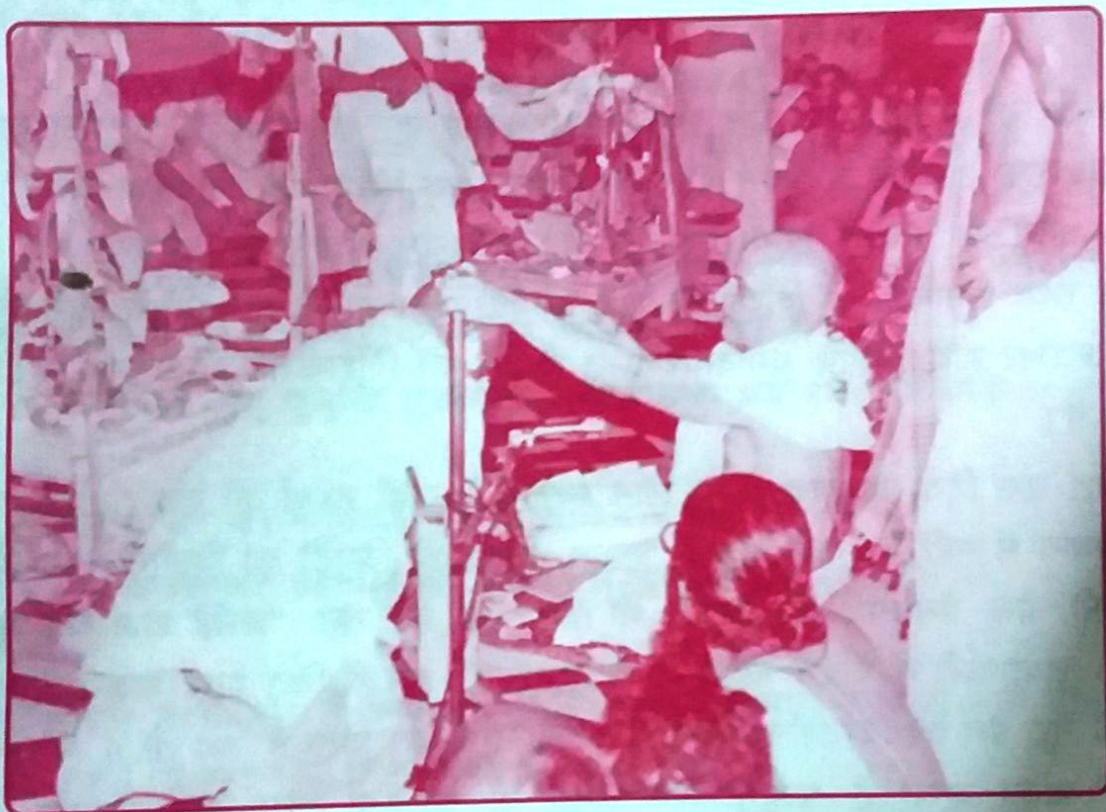
वैकुंठन को तिलक अयोध्याधाम सुहावन।
सरयूतीरे सिद्धिसदन शोभित मनभावन।।
प्रेममूर्ति गुरुदेव बिराजे प्रेम प्रदाता।
जय श्री हर्षण देव जगतगुरु जग विख्याता।।
जिनकी पदरज हम सबन्ह भवभय से उद्धारिणी।
वरद हस्त सिर पर रख्यो, धन्य सुरेन्द्र रामायणी।।

अध्याय - छः

श्री भरत के गूढ़ प्रेम की महिमा

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं ।

(कौशल्या अम्बा का कथन) 2/284/4

श्री भरत के अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप की महिमा का यत्–किंचित् उल्लेख कर देने के पश्चात् अब इस अध्याय से अपने प्रतिपाद्य विषय **"सब बिधि भरत सराहन जोगू"** की दिशा में उन्मुख होने का प्रयास किया जा रहा है। सर्वप्रथम श्रीराम एवं श्रीभरत की एकरूपता, सादृश्यता तथा समानता के विविध बिन्दुओं का दिग्दर्शन कराते हुए श्रीभरत प्रेम के वैशिष्ट्य की ओर अग्रसर होवें, क्योंकि प्रेमावतार भरत के प्रेम की विशिष्टता का अनुसंधान ही इस ग्रंथ का लक्ष्य है।

श्रीभरत उस दिव्य प्रेमतत्व के मूर्तिमान स्वरूप हैं, जहाँ स्वार्थ की गंध तो क्या परमार्थ की भी चाह स्वप्न में नहीं है। जहाँ साधक, साधन, साध्य की त्रिपुटी का विलीनीकरण हो गया है। जिसमें प्रेमी, प्रेम, प्रेमास्पद की त्रिपुटी भी समा गई है। अतः **"जाहि राम पद गूढ़ सनेहू"** 1/17/1 शब्दावली से वंदित महायोगी विदेहराज ही इसे किंचित् जान सकते हैं। परन्तु जब श्रीभरत के गूढ़ प्रेम का दिग्दर्शन कराने का प्रश्न उपस्थित होता है, तब तो वे, न केवल अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं, प्रत्युत् परम समर्थ नौ वक्ताओं तथा स्वयं भगवान श्रीराम की असमर्थता की भी घोषणा कर देते हैं, जिसकी चर्चा पूर्व अध्याय में हो चुकी है। वाणी का प्रवेश तो वहीं तक हो सकता है, जहाँ तक भुक्ति, मुक्ति की कामना का प्रवेश है। किन्तु जो प्रेमी भक्त चारों परम पुरूषार्थों की कामना को ठुकराकर केवल श्रीरामचरण कमल का लुब्ध मधुकर बन गया हो, उसकी अभिव्यक्ति वाणी कैसे कर सकती है। प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर भरत की आर्त–पुकार –

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहऊँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन ॥

2/204

दूसरे शब्दों में कहा जावेगा कि प्रत्येक भक्त भगवान को नैवेद्य समर्पित करने के बाद उसके प्रसाद की चाह करता है, पर श्रीभरत ऐसे विलक्षण भक्त हैं, जिन्हें प्रसाद के रूपमें एक कण भी नहीं चाहिये, क्योंकि ऐसा देखा गया है कि प्रसाद की याचना करने पर संकोचवश भोक्ता अपना आस्वाद ग्रहीता को अधिक मात्रा में दे बैठता है। कभी–कभी तो उसे समग्र रूप में दे डालता है। सहज स्नेह से परिपूर्ण निस्वार्थ, निस्पृह समर्पण ही श्रीभरत का परमध्येय, श्रेय और लक्ष्य सब कुछ है।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।
साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहिं लखि परत भरत मत एहू ।।

2/289/7–8

इसी स्थल पर इसी प्रसंग में श्रीविदेहराज ने वरवर्णिनी श्री सुनयना से श्रीभरत की कथा का महात्म्य भवबंधन से मुक्त कर देने वाला निरूपित किया है ।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव बंध बिमोचनि ।।

2/288/3

यही भवसागर पार कराने वाला गुण तो श्रीराम कथा में भी है न ?

भवसागर चह पार जो पावा । रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ।।

7/53/3

वस्तुतः श्रीराम कथा–गंगा में अवगाहन, मज्जन तथा जलपान करने से सभी दैहिक, दैविक, भौतिक पाप–तापों से छुटकारा मिल जाता है ।

सादर मज्जन पान किये तें । मिटहिं पाप परिताप हिये तें ।।

1/43/6

यही प्रभाव प्रताप श्री भरत–चरित्र में भी असंदिग्ध रूप से वर्तमान है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू । समन सकल संताप समाजू ।।

2/326/7

श्रीराम एवं श्रीभरत दोनों के चरित्र भवसागर से पार कर देने वाले तथा पाप–संताप–मोचक हैं। परन्तु इनमें किंचित् अंतर दृष्टव्य है। श्रीरामचरित मानस के सभी वक्ता अपने श्रोता को सावधान करते हैं कि श्रीराम के सगुण चरित्र सुगम होते हुए भी ऐसे अगम्य भी हैं कि श्रद्धा–विश्वास–हीन श्रोता अपने मति–भ्रम से उनमें कुतर्क का आश्रय लेकर दोष–दर्शन करके

मोह–ग्रस्त हो जाता है।

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोय ।

सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ।।

7/73(ख)

महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है कि श्रीराम के किसी–किसी विचित्र चरित्र को परम सुजान श्रोता ही समझ सकते हैं। जो बुद्धि–हीन मोह–ग्रस्त व्यक्ति ऐसे चरित्र को देखे–सुनेगा, वह अन्यथा धारणा कर लेगा। दक्ष कुमारी सती एवं पक्षिराज गरूड़ इसके उदाहरण हैं।

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान ।

जे मतिमंद बिमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन ।।

1/49

भगवान शंकर भगवती उमा से बतलाते हैं कि श्रीराम के गुण अत्यंत दुर्गम एवं गुप्त हैं। उनका अनुशीलन करके सज्जन, पंडित एवं मुनिगण वैराग्य लाभ करते हैं, जबकि विमूढ़ात्मा भगवत् विमुख जन एवं धर्मरहित अधमजन मोहग्रस्त हो जाते हैं।

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।

पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति ।।

3 प्रारंभ सोरठा

नीलगिरि स्थित भक्तराज काकभुसुंडि पक्षिराज गरूड़ से कहते हैं कि भगवान श्रीराम की लीला उनके भक्तों के लिए सुखप्रद है, जबकि दनुज वृत्ति वाले लोग उसे देखकर मोह–ग्रस्त हो जाते हैं।

असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ।।

7/73/1

महर्षि वाल्मीकि स्वयं भगवान् श्रीराम से कहते हैं कि हे राम! तुम्हारे चरित्र देखकर ज्ञानी जन ही सुखी होते हैं। अज्ञानी जड़ व्यक्ति तो मोह–ग्रस्त होकर अवसाद में पड़ जाते हैं ।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।

2/127/7

वस्तुतः भगवच्चरित्र ऐसे विशमयकारक होते हैं कि सामान्य जन की तो बात ही क्या ? चारों

वेदों के वक्ता जगत्पिता ब्रह्मा की बुद्धि भी उन्हें समझने में असमर्थ हो जाती है। तभी तो भगवान् श्रीकृष्ण को गोपकुमारों का जूठन माँग–माँगकर खाते देखकर वे मोह–ग्रस्त हो जाते हैं। श्री शुकदेवजी कहते हैं। (श्रीमद् भागवत महापुराण)

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।

स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥

10/13/44

भगवान श्रीकृष्ण की माया में तो सभी मुग्ध हो रहे हैं परन्तु कोई भी माया–मोह भगवान् का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण को अपनी माया से मोहित करने चले थे, किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होने पर भी अपनी ही माया में अपने आप मोहित हो गये।

जैसे श्रीकृष्ण लीला में ब्रह्माजी, शंकरजी तथा देवराज इन्द्रादि मोह–ग्रस्त हुए, वैसे ही भगवान् श्रीराम की लीला देखकर भी मोह–ग्रस्त होने वालों की सूची विस्तृत है। आचार्यों ने भगवल्लीलाओं का वर्गीकरण करके उन्हें 6 वर्गों में विभाजित किया है ।

(1) बाल लीला (2) विवाह लीला (3) वन लीला (4) रण लीला (5) राज लीला (6) रास लीला । इनमें प्रत्येक लीला के दृष्टा मोह–ग्रस्त होते पाये गये हैं। विस्तार– भय से उनका वर्णन न करके अंगुलि–निर्देश मात्र ही समीचीन होगा ।

(1) बाल लीला – (क) माता कौशल्या –

बिसमयबंत देखि महतारी । 1/202/6

तथा

बार बार कौशल्या, बिनय करइ कर जोरि ।

अब जनि कबहूँ ब्यापै, प्रभु मोहिं माया तोरि ॥ 1/202

(2) विवाह लीला – (क) देवराज इन्द्र –

सो बिलोकि सुरनायक मोहा। 1/289/8

(ख) जगत्पिता ब्रह्मा –

बिधिहिं भयउ आचरज बिशेषी । 1/314/8

(3) वन लीला – दक्षपुत्री सती –

जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बौरानी ॥

1/141/4

(4) रण लीला – पक्षिराज गरूड़ –

मोहिं भयउ अति मोह, प्रभु बंधन रन महुँ निरखि ।

चिदानन्द संदोह, राम बिकल कारन कवन ॥

7/68(ख)

(5) राज लीला – स्वयं गुरूदेव ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का कथन है –

देखि देखि आचरन तुम्हारा । होत मोह मम हृदयँ अपारा ॥

7/48/4

(6) रास लीला – वैसे श्रीरामचरित मानस में श्रीराम की रासलीला का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है, परन्तु आचार्यगण चिद्–विलास–क्षेत्र चित्रकूट में सांकेतिक रूप से वर्णित एकांतिक लीला को दिव्य रास लीला के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं ।

एक बार चुनि कुसुम सुहाये । निज कर भूषन राम बनाये ॥

सीतहिं पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥

3/1/3,4

गीतावली रामायण पद संख्या 44 में भी इसी दिव्य रास लीला का संकेत प्राप्त होता है।

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरू तमाल

ललित लता-जाल हरति छबि बितान की ।

निज कर राजीव नयन पल्लव-दल-रचित सयन

प्यास परस्पर पियूष प्रेम-पान की ॥

सिय-अंग लिखै धातुराग, सुमननि भूषन-विभाग

तिलक-करनि का कहौ कला-निधान की ।

माधुरी बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास

बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥

गीतावली रामायण अयोध्या कांड पद संख्या 44

इस लीला में इन्द्र पुत्र जयंत को मोह हुआ, जो काक–वेश धारण कर अपराध–प्रवृत्त हुआ।

"कीन्ह मोह-बस द्रोह" । 3/2

इस संक्षिप्त वर्णन का निष्कर्ष यह कि श्रीराम चरित्र में कहीं–कहीं कभी–कभी मति भ्रम एवं मोह उत्पन्न हो जाता है, जबकि श्रीभरत चरित्र निःसंशय श्रीराम–प्रेमोत्पादक है। उसमें मति–भ्रम एवं संशय–मोह–ग्रस्त हो जाने का प्रावधान ही नहीं है। श्रीभरत–चरित्र तो अवश्यमेव भवरस–विमोचन करता है।

भरत चरित कर नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ।।

2/326

श्रीराम–दर्शन का प्रताप है कि जीव को स्वरूप–सिद्धि हो जाती है। वह अपने आत्म–स्वरूप को पहचान जाता है। वह इस मायिक पंच–तत्व–निर्मित जड़ देह से ऊपर उठ जाता है।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ।।

3/36/9

परन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि श्रीराम दर्शन से भव–द्वन्द्व में पड़ा जीव मरणोपरान्त (देह–त्याग के बाद) ही परम पद प्राप्त करने का अधिकारी बनता है, परन्तु इस देह में – प्रारब्ध–वशात् भोगने वाले भव रोग से पीछा नहीं छुड़ा पाता है। उसकी स्थिति इस लौकिक दृष्टान्त से समझी जा सकती है।

किसी छात्र ने शिक्षक–पद प्राप्त करने योग्य निर्धारित उपाधियाँ अर्जित कर लीं। वह शिक्षक–पद पाने का अधिकारी बन गया। पर जब तक उसे शिक्षक–पद पर नियुक्ति का आदेश नहीं मिला, तो अर्हता होते हुए भी वह पूर्ववत् विपन्नावस्था में दिन कांटता है। जब उसे नियुक्ति–आदेश मिलकर वेतन मिलने लगा, तो उसकी विपन्नावस्था समाप्त हो जाती है। ऐसे ही श्रीरामदर्शन से **"भये परम पद के अधिकारी।।"** 2/139/2 मोक्ष के अधिकारी तो बन गये, पर अभी भी भव में पड़े हुए थे। वे श्री भरत के दर्शन से ही भव–रोग की निवृत्ति पा सके।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।।
तो सब भये परम पद जोगू । भरत दरस मेटा भव रोगू ।।

2/217/1,2

वन–पथ में ग्रामीण नारियों के उदगार हैं :–

हम सब सानुज भरतहिं देखे । भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ।।

2/223/3

महाकवि को ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीभरत के वेष में साक्षात् प्रयागराज पद यात्रा करते हुए अधिकारी अनधिकारी सबको कृत्कृत्य कर रहे हैं। भरत की प्रेमोन्माद दशा के दृष्टा समाधिस्थ होकर जिस परमानंद में निमग्न हो जाते हैं, उसमें मुक्ति से भी विलक्षण पुरूषार्थ प्रेम की प्राप्ति हो रही है। प्रयागराज के पास केवल चार पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हैं। कहा गया है– "चारि पदारथ भरा भँडारू" 2/105/4 विशिष्ट पंचम पुरूषार्थ प्रेम का दान करने में वे समर्थ नहीं हैं। प्रेम को सर्वसुलभ कराने वाला महापुरूष श्रीभरत तीर्थराज प्रयाग से भी विशिष्ट लोकोत्तर प्रयाग है, जो जंगम–तीर्थराज के रूप में भारतेतर सुदूरवर्ती सिंघल द्वीप वासियों को भी कृतार्थ करते हुए विचरण कर रहा है।

भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ।।

2/223

श्रंगवेरपुर के नायक निषादराज गुह ने पहले प्रकारान्तर से भरत की परीक्षा ली थी, कि इनके मन में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में से कौन सी विचारधारा पनप रही है, जिसके आवेश में ये श्रीराम के पास चतुरंगिणी सेना से सुसज्जित होकर प्रयाण कर रहे हैं। यदि इनके मन में राम के प्रति अनुराग का सात्विकी भाव होगा, तो इनकी दृष्टि कंद, मूल, फल जैसे सतोगुणी पदार्थों पर केन्द्रित होगी। यदि ये अपना राजसी तामझाम प्रदर्शित करने जा रहे होंगे, तो खग,मृग जैसे रजोगुणी पदार्थ इन्हें प्रिय लगेंगे। यदि श्रीराम के विरोध में अकंटक राज्य–लिप्सा से युद्ध करने जा रहे होंगे, तो निश्चित ही मछली जैसे तमोगुणी पदार्थों पर दृष्टि–विन्यास करेंगे। इसी आधार पर मैं इनकी मनोवृत्ति की जाँच कर लूँगा। बेचारे गुह क्या जानते थे, कि मैं जिस महामानव की परीक्षा लेने जा रहा हूँ, वे इन पदार्थों की ओर दृष्टिपात भी करने वाले नहीं हैं। वे तो त्रिगुणातीत महापुरूष हैं। उन्हें अन्य कोई लालसा होने की बात तो बहुत दूर, यह भी लालसा नहीं है कि उनको कोई श्रीराम के पक्षधर के रूप में सम्मानित करे। उनका कितना निस्पृह सिद्धांत है कि श्रीराम भी उन्हें अपना प्रेमी न मानकर कुटिल मानते रहें एवं सारा संसार उन्हें श्रीराम–द्रोही मानकर भर्त्सना का पात्र क्यों न बनाता रहे, फिर भी उनके हृदय में श्रीराम चरणानुराग दिन–प्रतिदिन नित नव नवायमान होता रहे। वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थिति में

प्रेम और अधिक निखरता है।

जानहुँ राम कुटिल करि मोहीं । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे । अनु दिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥

2/205/1,2

ऐसे सर्वथा आत्म–विस्मृत महापुरूष को भेंट उपहारों से प्रयोजन ही क्या हो सकता है? उन्हें कोई लौकिक पदार्थ अपनी ओर आकर्षित ही नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप परीक्षार्थ लाये गये तीनों गुणों वाले पदार्थ उपेक्षित पड़े रह गये।

अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥

2/193/2,3

जैसे ही गुरूदेव वशिष्ठ के मुख से उन्होंने सुना कि "राम सखा" उनसे मिलने आ रहा है, वे रथ से कूदकर उसको हृदय से लगा लेने के लिये आतुर होकर दौड़ पड़े। बेचारा लोक मान्यता से अस्पृश्य जाति का निषाद गुह दूर से ही जोहार करता हुआ पृथ्वी पर माथा टेककर पुकार उठा – "मैं श्रृंगबेरपुर निवासी निषाद गुह आपको प्रणाम कर रहा हूँ।"

गाँउ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारू माथ महिलाई ॥

2/193/8

महाभागवत भरत की मान्यता थी कि भला राम प्रेमी की भी कोई जाति है? कवितावली उत्तरकांड कवित्त संख्या 107 में वर्णित सिद्धान्त "साहिब को गोत गोत होत है गुलाम को" के अनुसार श्रीराम प्रेमी तो रामवत् ही परम पूज्य है। अतः श्रीभरत ने उस महाभाग गुह को भूमि से उठाकर इतने प्रेम से गाढ़ालिंगन किया, मानों उनका दुलारा लालन योग्य लोना लक्ष्मण सम्मुख पड़ा हो, जिसे हृदय से लगाकर वे अपनी वेदना शांत कर रहे थे।

करत दंडवत देखि तेहिं, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भई, प्रेमु न हृदयँ समाइ ॥

2/193

श्रीभरत की दृष्टि में रामसखा निषादराज गुह सखा तुल्य परम प्रिय है **"चले सखा कर सों कर जोरे** 2/198/5 किन्तु निषादराज गुह श्रीभरत का सेवक बनकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। **"सेवक बचन सत्य सब जाने"** 2/235/1

जब भरत ने निषादराज गुह से कुशल–मंगल का प्रश्न किया तो वह गदगद वाणी से बोल

उठा–"श्रीराम के पद पंकज जीव की कुशलता के हेतु हैं तथा मंगलमूल रूप हैं। उनके दर्शन से मेरे भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल मंगलमय बन गये। यह तो केवल एक ही पीढ़ी का उद्धार हुआ। परन्तु अब श्रीमान् भरत आपकी कृपा प्राप्त हो जाने पर मेरे करोड़ों पूर्वजों का कल्याण हो गया। मेरे समस्त पूर्वज परम मंगलमय बन गये हैं।

कुसल मूल पद पंकज देखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

2/195/7,8

गुह निषाद की इस उक्ति के विषय में अगर तार्किक रूप से विचार करें तो **"राम तें अधिक राम कर दासा"** 7/120/16 में वर्णित सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से पुष्टि होती है।

इस प्रसंग में जब निषादराज गुह ने श्री भरत दर्शन को श्रीराम–दर्शन की तुलना मेंअधिक कल्याण प्रद बतलाया तो मानों उन्होंने प्रेम को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठतर निरूपित किया। श्रीराम हैं–**"ग्यान अखंड एक सीताबर"** 7/78/4 जबकि श्रीभरत हैं – **"भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।"** 2/184/4 ज्ञान की तुलना में प्रेम की प्रबलता अन्यत्र भी दृष्टिगोचर हुई है। जब चक्रवर्ति नरेश दशरथ जी राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का प्रयास करते हैं, उस समय अयोध्या में समस्त समाज उपस्थित था। केवल श्रीभरत लघु–भ्राता शत्रुघ्न सहित उपस्थित नहीं थे। निदान प्रेम तत्व की अनुपस्थिति में महाराज का प्रयास सफल नहीं हुआ। रामराज्य बनने में बाधा उपस्थित हुई। पहले प्रेम–मूर्ति भरत ने चौदह वर्ष तक निरन्तर तपस्यारत रहकर ऐसे अनुपम आदर्श का प्रतिपालन किया, जिसकी सुदृढ़ नींव पर बाद में अखंड रामराज्य की स्थापना हुई। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जब तक चौदह वर्ष प्रेमराज्य की नींव नहीं डाली जाती, तब तक श्रीरामराज्य का आगमन नहीं हो सकता है। हमारा देश भारत अब तक स्वतंत्रता के साठ वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी रामराज्य का स्वप्न ही देख रहा है। काश, देश में पुनः श्रीभरत जैसे तपोमूर्ति का अवतरण हो जाता, तो देश श्रीरामराज्य से वंचित न रहता।

युगतुलसी पद्मभूषण पं. रामकिंकर उपाध्याय का कथन है– "महाभारत को रामायण बनाने के लिए केवल एक पात्र की आवश्यकता थी और वह थी श्रीभरत की। उधर रामायण भी महाभारत बन गया होता, यदि कैकेयी के पुत्र भरत के स्थान पर दुर्योधन हुआ होता।" इस उक्ति में प्रेममूर्ति श्रीभरत की महामहिमा ज्वलंत रूप से प्रकाशित है ।

एक दूसरा उदाहरण देखिये। ज्ञानस्वरूप श्रीराम के साथ अयोध्या–वासी अपनी मंजिल चित्रकूट नहीं पहुँच सके। बेचारे असहाय होकर दीन–दुखी अयोध्या लौट आये। वे निराश अयोध्यावासी प्रेममूर्ति भरत का अवलम्बन पाकर उनके साथ चलकर चित्रकूट पहुँच गये।

अवसि चलिअ बन रामु जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।

सोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबनु दीन्ह ॥ 2/184

अतः ज्ञान–राम के होते हुए भी मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता है। मनुष्य के मन में तभी परिवर्तन होता है, जब उसके हृदय में प्रेम का पदार्पण होता है। प्रेम ही मनुष्य की सारी बुराइयों को दूर करता है। आत्मा को प्रकाशित कर देता है।

भगवान श्रीराम ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था– देह से अधिक महत्व प्राण का होता है। मैं देह हूँ भरत मेरा प्राण है। अतः मुझ देह को राजा मत बनाइये। मेरे प्राण भरत को राजा बनाइये।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥ 2/42/1

वस्तुतः श्रीराम और श्रीभरत एक दूसरे के हृदय और प्राण हैं। दोनों का अन्योन्याश्रित अभिन्न सम्बन्ध हैं। प्राण के बिना शरीर और शरीर के बिना प्राण की स्थिति असंभव है। प्रेमी अपने प्रेमास्पद प्राण के बिना देह धारण को समर्थ नहीं होता। वहीं प्रेमास्पद भी अपने प्रेमी के प्रेम से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह स्वयं अपने प्रेमी के बिना जीवन धारण में असमर्थ होता है। इन दोनों परस्पर प्रेमी–प्रेमास्पद की तुलनात्मक विवेचना अगले अध्याय में दृष्टव्य है। इस अध्याय का समापन आचार्य महाप्रभु के "चतुर्धाम–यात्रा–वृत्त" के ख्याति प्राप्त लेखक–कवि श्री हरिगोबिंददास द्विवेदी के प्रेम–महिमा परक कबित्त के साथ–

प्रेमियों में प्रेम का तरंग रंग चढ़ता जब,
प्रेम को बिहाय और दृष्टि नहीं आता है ।
प्रेम का स्पर्श और वास भी बस प्रेम ही की,
प्रेम छोड़ और नहिं सुनना सुहाता है ॥
प्रेम का ही भोजन और प्रेम का ही पान-गान
प्रेमियों का संग रस-रंग सरसाता है ।
लगता है नीरस उन्हें जग का सब रागरंग,
"गोबिन्द" उन्हें प्रेम बिना और नहिं भाता है ॥

अध्याय - सात

प्रेमी श्री भरत प्रेमास्पद श्रीराम से विशिष्ट

प्रेम की सचमुच अनोखी रीत है ।
जो हृदय हारे उसी की जीत है ।।

पूर्व अध्याय छह में प्रेमास्पद राम एवं प्रेमी भरत को परस्पर एक दूसरे के प्राण एवं हृदय से उपमित किया गया है। स्वाभाविक है कि दोनों की हार्दिक अभिलाषा होगी कि हमारे हृदय धन हमसे अधिक गौरवान्वित होवें। प्रेमी भरत शैशव काल से ही प्रभु–क्रीड़ा के उपकरण मात्र बने रहे हैं। प्रभु उनका जैसा चाहें, उपयोग करें। इसी भाव में वे परमानंदित होते रहे हैं। उर्दू भाषा का यह प्रसिद्ध शेर उनके मनोभाव का द्योतक है।

जीता रखे तू हमको या धड़ से सर उतारे ।
अब तो फकीर आशिक कहता है यूँ पुकारे ।।
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है ।
याँ यूँ भी वाह वा है और वूँ भी वाह वा है ।।

बाल्यकाल में प्रभु उन्हें खेल में प्रति–पक्ष का नायक बनाकर खेला करते थे। वे उनकी आज्ञा, बिना ननु–नच के स्वीकार कर लिया करते थे, भले ही क्रीड़ा के कतिपय दर्शक यह धारणा बना लेते थे कि लक्ष्मण तो खेल में भी प्रभु श्रीराम के विरोध में कभी नहीं खड़ा होता, जबकि श्रीभरत प्रेमास्पद श्रीराम के विरोधी–दल के नायक बने हुए हैं। दर्शकों की इस गलत धारणा से भरत के कर्त्तव्य–पालन में रंचमात्र भी कमी नहीं आई। वे तो अपने प्रेमास्पद श्रीराम की रूचि का निर्वाह कर रहे थे। लोगों की आलोचना से वे विचलित नहीं हुए।

जानहुँ राम कुटिल करि मोहीं । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ।।

2/205/1

गीतावली रामायण बालकांड पद संख्या 45 श्रीराम एवं भरत की बाल क्रीड़ा दर्शनीय है। कल्पना कीजिये–कभी कबड्डी खेलने का विचार बन गया। लक्ष्मण तो स्वभावतः श्रीराम के पक्षधर ही थे। अतः वे श्रीराम के प्रति पक्षी दल में कैसे शामिल होते ? निदान खिलाड़ियों के गठन का स्वरूप इस प्रकार बना।

राम, लखन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ।।

क्रीड़ा–क्रम में भरत–दल के खिलाड़ी क्रमशः मारे जाकर बैठा दिये गये। अकेले श्रीभरत अपने दल में शेष बचे थे। स्पष्ट हार संभावित थी। अब श्रीराम ने अपने दल के अन्य खिलाड़ियों को रोककर कहा– "अब दलनायकों की भिड़न्त होगी।" अतः श्रीराम कबड्डी बोलते हुए श्रीभरत की पार में पहुँचे। श्रीभरत ने आगे बढ़कर श्रीराम के चरण पकड़ लिये। अब श्रीराम के लिए यह संभव ही नहीं था कि वे श्रीभरत के हाथ से अपने चरण छुड़ाकर वापस अपनी पार में लौट आवें। कुछ देर कबड्डी–कबड्डी बोलकर वे शांत हो गये। जब दलनायक ने ही खेल में हार को वरण कर लिया, तो आगे खेल जारी न रखकर अपने दल की हार तथा भरत की विजय घोषित कर दी गई। अब क्या था भरत की विजय से आनंद विभोर होकर श्रीराम हाथी, घोड़े, वस्त्र और मणियों को उपहार में बॉटने लगे। प्रभु राम से पारितोषिक पाकर सखा, सेवक और याचकगण जन्म भर दूसरे के द्वार पर नहीं गये। आकाश में विमानों से जयध्वनि के साथ दुंदुभियाँ बजाई जाने लगीं। आकाश से एवं नगर में जहाँ तहाँ न्योछावर की वर्षा हो रही है तथा देवता और सिद्ध गण मुक्तकंठ से आर्शीवाद दे रहे हैं। भरत को खेल में हार जाने पर तो हर्ष होता है, जबकि जीतने पर संकोचवश उनके सिर और नयन नीचे हो जाते हैं। महाकवि गोस्वामिपाद ने कहा कि प्रभु के ऐसे शील स्वभाव को स्मरण कर जो इसी रंग में रँगे हुए हैं, वे लोग बड़े पुण्यशाली हैं।

एक कहत भइ हार राम जू की, एक कहत भइया भरत जये ।
प्रभु बकसत गज बाजि बसन मणि, जय धुनि गगन निसान हये ।।
पाइ सखा सेवक जाचक, भरि जनम न दुसरे द्वार गये ।
नभ पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर सिद्धन वरदान दये ।।
भूरि भाग अनुराग उमगि, जे गावत सुनत चरित नितये ।
हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच सिर नयन नये ।।
"तुलसी" सुमिरि सुभाय सील, सुकृती तेइ जे एहि रंग रये ।।

गीतावली बालकांड पद संख्या 45

इस तरह प्रत्येक खेल में श्रीराम अपनी हार तथा श्रीभरत की जीत का विधान बना देते थे। कविरत्न भैरव द्विवेदी रामायणी ने अपनी "मानस–तरंग" में अवधराज–सिंहासन को गेंद बनाकर

दोनों भाइयों द्वारा खेल खेले जाने की मनोरम कल्पना की है। इस खेल में भी अवधराज–सिंहासन रूपी गेंद अंततः श्रीराम की गोल में ही प्रविष्ट हुई। अंत में श्रीराम को अवधराज–सिंहासन स्वीकार करना पड़ा। अस्तु इस खेल में भी श्रीराम ने ही अंतिम हार स्वीकार की है।

राम भरत में आज ठन गई, "भैरव" एक लड़ाई ।
चौदह वर्ष लड़ेंगे दोनों, चलो देखने भाई ।।
एक ओर हैं राम, दूसरी ओर भरत व्रतधारी ।
अवधराज को गेंद बना, दोनों ने ठोकर मारी ।।
लड़कर चौदह वर्ष राम ने, मानी अपनी हारी ।
जीत गये इस महासमर में, भैया भरत खिलारी ।।

प्रभु श्रीराम द्वारा प्रत्येक खेल में विजयी बनाने को भरत ने अपने प्रति अपार छोह (वात्सल्य) एवं अनुपम स्नेह के रूप में स्वीकार किया। भरत सर्वदा सिर नीचा करके ही इसे ग्रहण किया करते थे।

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं ।।

2/260/8

एवं

निज पन तजि राखेउ पनु मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ।।

2/266/8

श्रीराम की तुलना में श्रीभरत को सर्वत्र विशिष्टता प्रदान की गई है। राम को तो केवल "अतिथि" शब्द से ही मान्यता दी गई है।

मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये । कंद मूल फल मधुर मँगाये ।।

2/125/3

जबकि परमप्रेमी श्रीभरत को "अतुलित अतिथि" की संज्ञा दी गई है–

कहहिं परस्पर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम लघु भाई ।।

2/214/2

श्री राम को केवल "साधु" शब्द की संज्ञा दी गई। महाराज दशरथ ने "सुठि" विशेषण

जोड़कर परिचय दिया ।

सब कोउ कहइ राम सुठि साधू । 2/32/6

परन्तु वे प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्णतम साधु नहीं हो सकते हैं। यह उपाधि तो प्रयागराज में भगवती त्रिवेणी ने प्रेमी श्रीभरत को सम्बोधित करते हुए प्रदान की। प्रश्न उठता है कि श्रीभरत ही सब प्रकार से साधु क्यों हैं ? श्रीराम क्यों नहीं ? तो त्रिवेणी अम्बा ही आगे कारण निरूपित करती हैं, कि श्रीराम चरणानुरागी भक्त ही सर्वप्रकारेण साधु हो सकता है। श्रीराम स्वयं अपने चरणों में अनुराग तो कर नहीं सकते। अतः इस एक गुण में वे श्रीरामचरण पंकज के लुब्ध मधुप श्रीभरत से पिछड़ ही जावेंगे। अतः

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ।।

2/205/7

साधु के साथ स्वाभाविक रूप से निरपराधिता का सद्गुण संयुक्त रहता है। अतः राम के निरपराधी होने का प्रमाणपत्र कोप–भवन में स्थित माता कैकेयी क्रोधयुक्त दशा में होने पर भी प्रदान करती हैं।

तुम्ह अपराध जोग नहिं ताता । जननी जनक बंधु सुखदाता ।।

2/43/3

इधर महर्षि भरद्वाज ऐसा ही प्रमाणपत्र भरत को प्रदान करते हुए उन पर दोषारोपण करने वाले को नीच, अज्ञानी, दुष्ट एवं पतित पुकारते हैं।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू । कहै सो अधम अयान असाधू ।।

2/207/7

दयार्द्र होना भी साधु का सहज स्वभाव होता है। **"पर दुख द्रवहिं संत सु पुनीता।"** 7/125/8 साधु की सहज विशेषता है। वे किसी का अनिष्ट नहीं कर सकते। **"साधु तें होइ न कारज हानी।"** 5/6/4 यह श्री हनुमान् का निश्चित मत था। इस सिद्धांत के आधार पर अनुसंधान करने पर हम पाते हैं कि समस्त अनर्थों की मूल प्रेरक मंथरा को भी शत्रुघ्न द्वारा प्रताड़ित किया जाता देखकर श्रीभरत दयार्द्र हो उठे। उन्होंने उसे ताड़ना से बचा लिया। तब उन्हें केवल दयालु नहीं वरन् "दयानिधि" शब्द से सम्बोधित किया गया।

भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई । 2/163/8

इस विषय में श्रीराम करूणा सिंधु होते हुए भी न्यायाधीश पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण अपराधी जीव को दंड देने हेतु विवश हो जाते हैं। अतः शुभाशुभ कर्मफल प्रदाता बनना उनकी अनिवार्य बाध्यता है। वे कहते हैं कि

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरू असुभ कर्मफल दाता ।

7/41/5

फलस्वरूप "को कृपालु रघुबीर सम" 3/2 होते हुए भी काकरूप धारी अपराधी जयंत को "एक नयन करि तजा भवानी" 3/2/14 का अत्यल्प दंड देना उनकी न्याय परायणता की रक्षा के लिये परमावश्यक बन गया।

जयंत–दंड के संदर्भ में एक रहस्य विचारणीय है कि एक नेत्र–हानि का दंड ही क्यों निर्धारित किया गया ? अन्य कोई दंड क्यों नहीं ? यहॉ एक तथ्यपूर्ण बात यह है कि देवगुरू बृहस्पति ने देवराज इन्द्र से कहा था–

सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।।

2/218/4,5

अतः देखें कि जयंत ने अपराध किसका किया था ? इसकी खोज करनी होगी। माता कौशल्या ने अपनी पुत्रवधू सीता के विषय में कहा था–

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ।।

2/59/2

अतः सीता पर चोट मानों कौशल्या माता की आँख पर चोट की गई थी। अतएव माता कौशल्या की आँख पर चोट करने के कारण नियमानुसार जैसे को तैसा दंड–एक आँख गँवाने का निर्धारित किया गया।

जयंत–प्रकरण पर गहराई पर विचार करें, तो वस्तुतः जयंत ने मोहांध होकर अपराध किया था। **"मोह न अंध कीन्ह केहि केही"** 7/70/7 अगर अंधे व्यक्ति को एक ऑख का काना बना दिया जावे, तो उसे एक ऑख का दान करना कहा जावेगा, न कि एक नेत्र से हीन करना। अतः जयंत पर कृपा की गई, न कि कोप। अतएव **"को कृपालु रघुबीर सम"** 3/2 कहना उचित ही है।

अब श्रीरामजी द्वारा निर्धारित एक और दंड पर विचार करें। नारी–कुल–कलंक, कुलक्षिणी, आततायिनी शूर्पणखा प्रकरण में उन्होंने मौन बनकर संकेत मात्र से अनुज लक्ष्मण को समझा दिया था कि इसे नकटी–बूची बनाकर छोड़ दो, क्योंकि निर्लज्जतापूर्वक दो–दो व्यक्तियों से एक–दूसरे के सामने वासनापूर्ण प्रेम–प्रस्ताव करके यह नकटी तो पहले ही बन गई है। श्रुति–विरूद्ध बात करने से श्रुति–हीन बूची भी बन चुकी है। अब बाह्यरूप से भी नकटी–बूची बनाकर इसके भ्राता लंकेश रावण के पास चुनौती रूप में भेजो। यह भविष्य में भी कुमार्गगामी नारियों के लिए उदाहरण बनकर चेतावनी के रूप में प्रस्तुत रहे।

सीतहिं सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ।।

3/17/20

श्रीराम द्वारा किये गये संकेत का वर्णन वखै–रामायण में स्पष्ट किया गया है ।

बेद नाम कहि, अँगुरिन खँडि अकास ।

पठ्यो सूपनखहिं, लखन के पास ।।

अरण्य कांड 28

अर्थात् राम ने चार अँगुलियाँ दिखाकर चार वेदों का संकेत किया। वेद का अर्थ श्रुति होता है। श्रुति का दूसरा पर्याय कान हो गया। अकास (आकाश) को संस्कृत में नाक कहते हैं। अकास की ओर अँगुली करके खंडि के इशारे से नाक–कान काटे जाने की आज्ञा दी गई।

आजकल नारी–मुक्ति–आंदोलन नाम धारी तथाकथित प्रगतिशील कहे जाने वाले विघ्न–संतोषी लोग इस प्रकरण पर बवाल खड़ा करते हैं, कि नारी के नाक, कान कटवाना श्रीराम के मर्यादा–पुरूषोत्तम स्वरूप पर कलंक है। उन भले आदमियों से पूछा जावे कि क्या वे केवल नाग को मारते हैं, नागिन को छोड़ देते हैं ? शूर्पणखा को स्पष्ट शब्दों में दुष्ट हृदयवाली नागिन कहा गया है।

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी ।।

3/17/3

शास्त्राज्ञा के अनुसार वह स्वैरिणी वधार्ह थी। यह श्रीराम की उदारता ही थी, कि उसका वध न करके उसके नकटीवत् कलंकित आचरण के अनुरूप उसका बाह्य स्वरूप भी बनाकर प्राण–दंड से अपेक्षाकृत कम दंड छोड़ दिया था। आखिर श्रीराम "धर्म धुरंधर" भी तो हैं। उनकी

धर्मधुरीणता का बर्णन करते हुए गुरूदेव वशिष्ठ की वाणी है।

धर्मधुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस भगवानू ।। 2/254/2

पुनः

धर्मधुरीन धीर नय नागर । सत्य सनेह सील सुख सागर ।।

2/304/5

पिता महाराज दशरथ की दृष्टि में भी राम धर्म–धुरन्धर हैं।

धरम धुरन्धर धीर सयाने । 2/78/2

महर्षि अत्रि–प्रसंग में–

धर्म धुरन्धर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ।।

3/6/4

आगे उत्तर कांड में भी

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा । धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ।।

7/5/5

उधर श्रीराम की दृष्टि में इस सद्गुण धर्मधुरीणता के सच्चे धारक श्रीभरत हैं। चित्रकूट की सभा में श्रीराम ने श्रीभरत को धर्म धुरन्धर समझकर ही निर्णय का गुरूतर भार सौंपकर निश्चिंतता का अनुभव किया था।

भरतहिं धरम धुरन्धर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।।

2/259/2

विदाई के समय श्रीराम के उद्गार थे कि भरत तुम सचमुच धर्म धुरन्धर हो। नदी के दो किनारों की तरह लोकमत एवं वेदमत प्रथक–प्रथक दिखाई देते हैं, किन्तु तुम लोक–वेद–मत दोनों का समन्वय करके ऐसे प्रेम–पथ के निर्माता हो, जिसमें प्रेम के नाम पर लोक–मर्यादा से उच्छृंखलता और श्रुति–विरोध का लवलेश नहीं है।

तात भरत तुम धरम धुरीना । लोक बेद विद प्रेम प्रबीना ।।

2/304/8

विनय–पत्रिका में श्रीभरत की स्तुति में कहा गया है

पादुका-नृप-सचिव, पुहमि-पालक परम,

धरम-धुर-धीर वर वीर भारी। पद संख्या 39/3

देवगण एक स्वर से उद्घोष करते हैं–

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥

2/233/1

शास्त्र–प्रणेता स्मृतिकार गुरूदेव ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की दृष्टि में धर्मधुरीणता सद्गुण में भरत शिखर पर हैं। जब भरत उनसे नंदिग्राम में अपनी रहनि के विषय में आज्ञा माँगने गये कि–

आयसु होइ त रहौं सनेमा । बोले मुनितन पुलकि सप्रेमा ॥

2/323/7

तो गुरूदेव प्रेम विभोर होकर पुलकित हो गये। वे बोल उठे कि मैं धर्म–नियामक तुम्हें स्पष्ट आज्ञा देता हूँ कि अब धर्म का अनुशासन तुम्हारे ऊपर नहीं, वरन् धर्म तुम्हारा अनुसरण करने वाला बन गया है। तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वह सब धर्म का सारतत्व होगा। वस्तुतः तुम जो समझते हो, वही कहते हो और वही करते हो। तुम्हारे आचरण में मन, बचन और कर्म की एकरूपता प्रकट है। सचमुच तुम धर्म को जीते हो। धर्म धुरन्धर जो हो। तुम्हारी कोई रहनि धर्म–विरूद्ध हो ही नहीं सकती। प्रत्युत् तुम्हारा आचरण स्वयं धर्म का मार्ग प्रशस्त करेगा। मन, वचन, कर्म की एकरूपता से तुम पूर्ण महात्मा हो।

समुझब कहब करब तुम जोई । धरम सारू जग होइहि सोई ॥

2/323/8

मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् ।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण के वचन हैं कि जो पुरूष शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही। अतः हे अर्जुन तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत कर्म करने के योग्य है, क्योंकि शास्त्र ही धर्म का मार्ग दिखाकर कर्त्तव्य की शिक्षा देता है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।